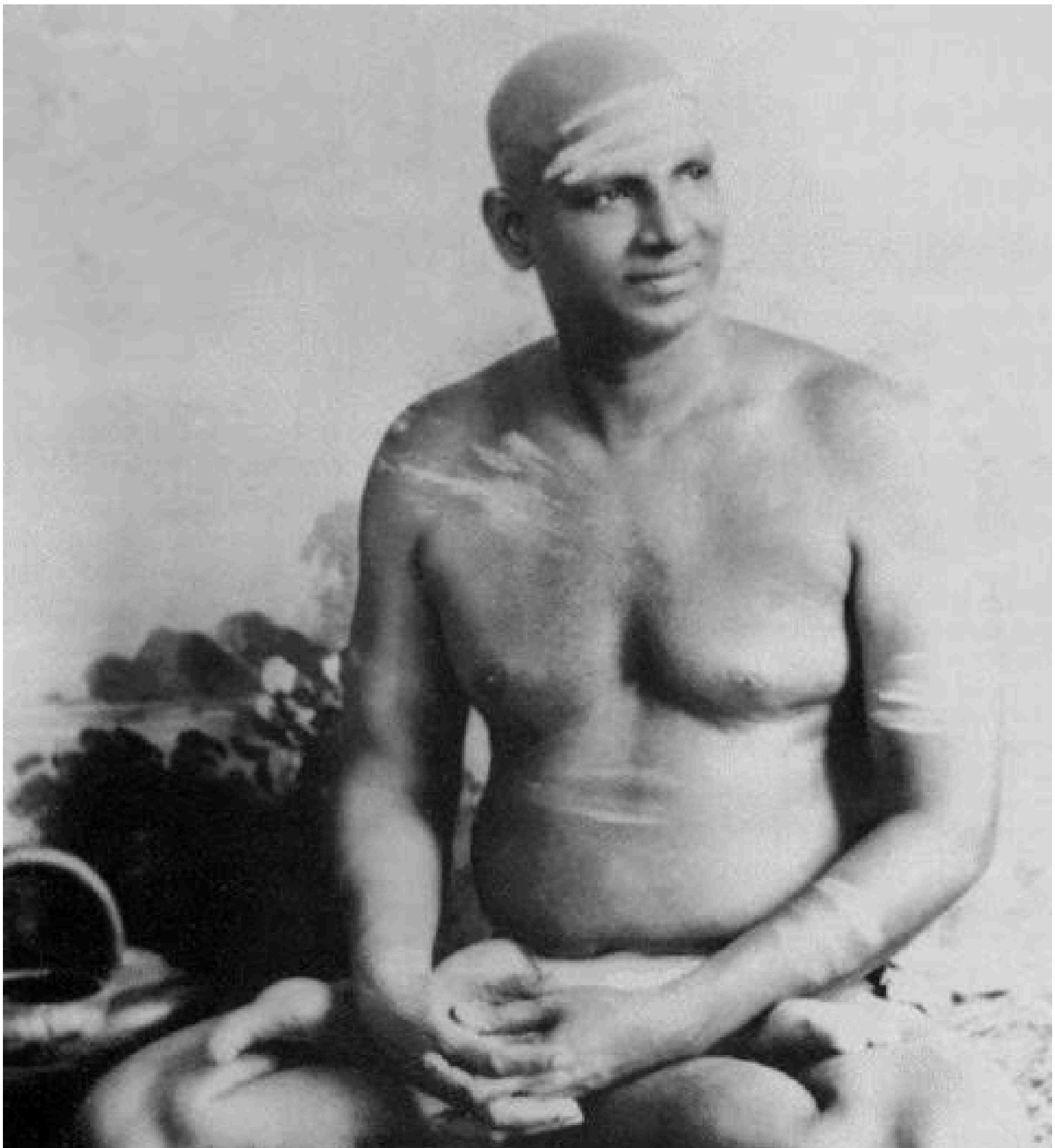
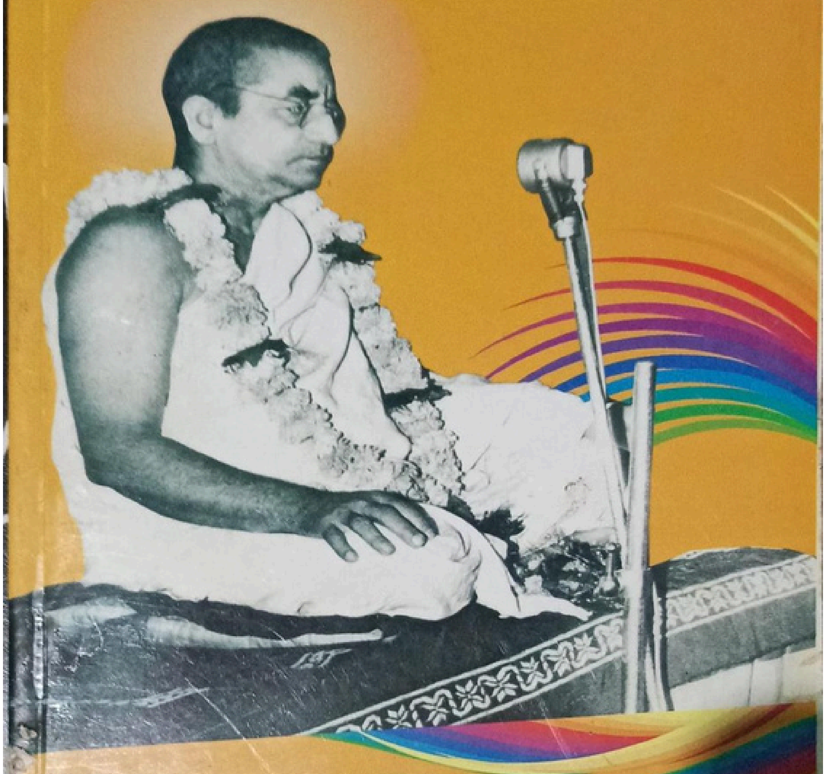


मुक्तोद्गार

- महर्षि मुक्त



मुक्तोद्‌गार

जो दर्नश, प्रत्यक्ष रूप से परमात्मा का
दर्नश करा दे, उसका ही नाम दर्नश है।

महर्ष शमुक्त

मुक्तोद्गार

प्रकार्क	:महर्ष शमुक्तानुभूततसाहहत्यप्रचारकसममतत केन्द्र, दुगुश(छत्तीसगढ़) (सर्ाधशिकार सुरक्षक्षत प्रकाकिर्ीन)
मुरक	:नेचर ग्राफिक्स र्ातांत चौक, पुरानी बस्ती, रायपुर मो.: 9302230478
ससांकृत	:तृतीय, र्ष श: 2012
प्रतत	:1000
कायालशय एर् ां- पुस्तक ममलने का पता	:डॉ. एस.एन. त्रिपाठी 50/152, बिांर्ापारा, पुरुानी बस्ती रायपुर (छ.ग.) - 492001 मो. : 9926130014
मूल्य	

समपणश

मातृदेर्ो भर् ।
र्पतृदेर्ो भर् ।
आचाय शदेर्ो भर् ।।

परम् ्पूज्य सद्गुरुदेर् महर्ष शमुक्त के
श्रीचरणों में सादर समर्पतश

महर्ष शमुक्तानुभूतत साहहत्य प्रचारक सममतत

संक्षिप्त-कथन

'श्री महर्ष शमुक्त' के उद्गार श्री महर्ष शजी के पररचय के प्रतीक हैं, प्रत्यक्ष, अनुमान, तनगम एर् ां स्र्ानुभूतत प्रमाण समांसद् सिमस्त चराचर का अस्स्तत्र् 'म' ैं हूँ, 'म' ैं हूँ इस प्रकार तनत्य प्रसुिहित सस्चचदानदां घनभूत भगर्ान आत्मा का साक्षात्कार कराना स्जनके मलए हस्तामलकर्त् ् है।

उपरोक्त अनाहद, अक्षय सार्भशौम मसद्गान्द्त का सतत् ् प्रचार करना श्री महर्ष शजी के जीर्न का चरम लक्ष्य है।

अलं ं

परमानंद शास्त्री

रायपुर (छत्तीसगढ़)

तृतीयावृत्तत्त का प्रकाशकीय कथन

र्गत कई र्षों से 'मुक्तोद्वार' की मागां को देखते हुए इसके सकांलनकत्ताशश्री नरनारायण जी अर्ा्ल
से इस पुस्तक का पुनः प्रकार्न हेतु अनुमतत प्राप्त कर, सममतत इस नर् कायाकस्ल्पत, सर्ाोधित मुक्तोद्र्ार की
तृतीयारूर्त्त स्जज्ञासु पाठकों को भेंकिरते ेहुए हषानुशभर् कर रही है।

रूदि् योगी का फकसी र्ेर् र्ीर में परकाय प्रर्ेर् करने के उपरातां भी उसके अनुभर् में फकांधचत मिा भी
कमी नही ांहोती। बस, इसी तरह मुक्तोद्र्ार का काया कस्ल्पत नया रूप आपके समक्ष प्रस्तुत है, इसमें उन सभी
पररमर्षी का समार्ेर् ज्यों का त्यों फकया गया है, जैसा फक इसकी प्रथमारूर्त्त में है।

सर्ाांनि में कही–ांकही ांपर िुहिया ूँरह गयी हैं, इसके मलए सममतत क्षमा चाहती है और पाठकों से अनुरोि
करती है फक इसे ेसुिार कर पढ़ें।

महत्तष िमुक्तानुभूतत
साहहत्य प्रचारक सममतत

प्रस्तावना

'मुक्तोद्गार' में महर्ष शमुक्त द्वारा समय-समय पर हदए गए प्रर्चनों, र्ाताओशां के माध्यम से अध्यात्म दर्नश का सार प्रस्तुत फकया गया है। श्रीमद भर्तगीता के सूि 'स्र्भार्ोऽध्यात्म' की एक र्ृर्द व्याख्या है यहा ां अध्यात्म का सार है स्-भार् अथात्श ्आत्म-भार्। प्रकितः भार् दो ही होते ेहैं-आत्म-भार् और र्ेषय-भार्। र्ेषय-भार् को ही कभी 'अनात्म-भार्' भी कह हदया जाता है, फकांतु, ऐसा र्ाक्-र्पययश के िलस्र्रूप होता है, न फक इसमलए फक अनात्म जैसा कोई र्ास्तर्र्क अस्स्त रूप होता है। अर्थ्य, र्ेज्ञान अपने अध्ययन की सुर्र्ाा हेतु र्ेषय-भार् को एकातांतक 'पदाथ-श भार्' का रूप दे देता है। फकांतु उसका उद्देश्य भी अतांतः 'पदाथ'श के स्- भार् या आत्म-भार् को ही उजागर करना होता है। अब, जहा ूँभी ज्ञिम- भार् है, हूँफकसी न फकसी तरह आत्मा का सस्न्द्नर्ेर् अर्थ्य होगा। र्ेज्ञान का 'पदाथ'श जड़ भार् है, इसमलए उसके आत्म-भार् का तनदर्नश चैतन्द्य- िमी आत्मा के प्रकार् के त्रबना असभांर् है। मूल प्रकृतत में 'महत्'् (र्र्ा सृजृनात्मक अर्गमनात्मक बुद्धि) का सुर्िनि त्रबना पुरुष (आत्मा) के सास्न्द्नध्य के सभांर् ही नही ांहै। इस तरह आत्मा के सास्न्द्नध्य में अर्गम्य पदाथ श श ्अध्यात्म-दर्नश में प्रकृतत या पदाथ श (प्रकृतत) ही अध्यात्म की दृस्ष्ट में 'र्ेषय' स्र्रूपेण प्रस्तुत होता है। अथात् का आत्म-भार्ी अस्स्त-रूप अध्ययन की र्स्तु बनता है, जबफक र्ेज्ञान में र्ही र्र्क्त रूपेण (Abstraction) अनात्म के छद्म अस्स्त-देर् में प्रस्तुत होता है।

अब, यह एक र्ेलक्षण सी बात है फक र्ेज्ञान की र्ैली में पादाधथकश आत्म-भार् को अनात्म-भार् का र्ैकस्ल्पक रूप देकर प्रस्तुत फकया जाता है। यह कैसे ेसभांर् होता है? इस तरह के स्जन प्रश्नों या समस्याओांसे र्ेज्ञान की उद्भार्ना होती है उनमें अस्स्त या सत् ्के स्र्रूप के प्रतत अज्ञानता या उसके ज्ञान के प्रतत सदोंह का दृस्ष्टकोण प्रिान होता है। इसके र्पपरीत, अध्यात्म में उक्त अज्ञानता या ज्ञान के प्रतत सदोंह न होकर उनके सदांभ शमें स्जज्ञासा का यह दृस्ष्टकोण होता है फक तद्-तद् रूपों में र्े फकस तरह सत् ्के अतनर्ायतशः तनदमर्तश आत्म-रूप को र्पयस्शत कर देनेमें समथ शहोते ेहैं।

जूडो-फिस्श्चयन िाममकश परांपरा में 'ईश्र्र' की तरह र्ेज्ञान में 'सत्'् 'छुपा हुआ' होता है, जबफक भारतीय िाममकश परांपरा और अध्यात्म में स्र्य–ांप्रकाश्य रूपेण प्रस्तुत रहता है। यह श्रीमत स्जज्ञासा ही अध्यात्म की ही होते ेउत्सुकता और आश्चय शकी अमभव्यस्क्त है। उसका जन्द्म अज्ञान या सदोंह में अतः, जैसा फक महर्ष शमुक्त कहते ेस्जज्ञासा ही अध्यात्म की प्रेरर्का है, न फक प्रश्न या समस्याए।ूँ स्जज्ञासा फकसी अज्ञात उत्तर को ढूँढनेकी र्र्ा नि होकर, प्रस्तार्र्त उत्तर के प्रतत उत्सुकता और आश्चय शकी अमभव्यस्क्त है । उसका जन्द्म अज्ञान या सदोंह में न होकर ज्ञान में होता है, । अज्ञान या सन्द्देह-जन्द्य सत् ्के प्रकि ज्ञान-स्र्रूप को समझाने के मलए होती है।

अध्यात्म और र्ेज्ञान के बीच प्रकि अतांर को और अधिक स्पष्टतापूर्कश समझने के मलए हमें र्ेदाांत के 'अध्यास' की िारणा पर ध्यान देना चाहहए। जैसा फक महर्ष शमुक्त कहते ेहैं 'अध्यास' तीन तरह के होते ेहैं- देहाध्यास, जीर्ाध्यास और ब्रह्माध्यास। 'अध्यास' का अथ शहै- आत्म-भार् (सत्)् पर अनात्म-भार् (असत्)् का प्रक्षेप। यहाूँदो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक, यह फक चूूँफक भार् मिा ही सत् ्का अथ शरखता है, स्जज्ञासा होती है फक असत् ्या अनात्म भार् क्योंकर सभांर् हो पाता है और दूसूरी यह फक चूूँफक भार् के अथ शमें कभी अभार्मूलकता

नहीांहोती, उसके सदांभ शमें असत् ्का भासमान होना (प्रक्षेणे रूपेण) कैसे ेसभार् हो पाता है? स्जन स्जज्ञासाओांपर अध्यात्म की भूमम तैयार होती है, उन्द्हीांमें उक्त दो स्जज्ञासाएँभी र्ाममल हैं।

कम शजगत् ्में 'मˈ ैं आत्म-भार् पर 'मेरा र्ीर' के अध्यारोपण से 'देहाध्यास' होता है। यह तमोगुणजन्द्य है, अथात्श ्अज्ञान-जन्द्य है। यहाँ'मˈ ैं आत्मा के मलए सािनर्त् ्प्रस्तुत देह को आत्म-भार् से सस्ांश्लष्ि समझ लेने का भ्रम तछपा हुआ है। उपासना (भार्ना) जगत् ्में 'मˈ ैं आत्मा पर 'मेरा मन' का आत्मभार्ी अध्यारोपण होनेसे 'जीर्ाध्यास' होता है। यह रजोगुण जन्द्य है अथात्श ्र्ष्यमूलक सकांल्प-र्कल्प जन्द्य। 'मˈ ैं आत्मा पर र्षयारेस्छत आर्ेग का आर्रण होनेसे आत्म-भार् के 'र्षयी' होनेभ्रम के िलस्र्रूप जीर्ाध्यास होता है। यह जैर्-तृष्णा का क्षि है। ज्ञान में जगत् ्में 'मˈ ैं आत्मा पर आत्मेतेर 'परमात्मा' के अध्यारोपण से 'ब्रह्माध्यास' होता है। यह सतोगुणजन्द्य है, अथात्श ्दो क्षेिज्ञ-प्रभेद जन्द्य भ्रम (देह क्षि और जीर्-क्षि में 'आत्मा' और मूल प्रकृतत क्षि में 'परमात्मा' के बीच भेर्े सेपैदा हुआ भ्रम)। इन तीनों प्रकार के अध्यास या भ्रम का तनराकरण इस सहज बोि से हो जाता है फक 'मˈ ैं आत्मा पर ही देह-भार्, जीर्-भार् र् ब्रह्म-भार् आिोररत है, जबफक स्र्य ांउस आत्म-देर् में इन सभी भार्ों का अभार् हो ई सर् शका सर् श'मˈ ैं परम तत्र् है, स्जसमें एकातांतक आत्म-भार् की भार्ना का भी लोप हो जाता है। इसमलए उपतनषदों में कहा गया है फक ई परम-तत्र् (आत्मा) फकसी भी सािन-प्रर्चन, श्रर्ण, तनहदध्यासन, बुद्धि-द्र्ारा अप्राप्य है। ई अपनी ही प्रेरणा से, अपनी ही स्र्क्त से प्रकि होता है। यही ां भगर्द्कृपा है।

अब, यद्यर्प 'मˈ ैं आत्मा सहज बोि गम्य है, सासाांररक मनुष्य में उसकी उद्भार्ना सरल नहीांहै। सासाांररक मनुष्य 'इदम् ्गम्य' प्रपचां या र्षय जगत् ्का जीर् है, जबफक 'मˈ ैं आत्मा का क्षि 'अहांगम्य' है, स्र्य–ां प्रकाश्य है। प्रपचां क्षि सदैर् माना जाता है, जाना नहीां, जबफक 'मˈ ैं सदैर् जाना जाता है, माना नही।ां प्रपचां र्कल्प रूपेण प्रस्तुत होता है, ई धचत्त या मनोर्ृस्त्तमूलक सकांल्प में कारण भूत है, इसमलए उसमें सदोंह या िोखा है, जो र्स्तुतः सभी प्रकार के अध्यासों के मूल में हैं। दूसरी ओर, 'मˈ ैं आत्मा का अहां प्रकाश्य क्षि प्रपचां र्ून्द्य है, ई कभी र्कल्प-रूपेणे प्रस्तुत नहीां होता, उसकी प्रकार्ता अबाधित र् र्ाश्र्त होती है। अतः मि आत्मा ही त्रिकालाबाधित सत् ्है। पुनः, चूँफक 'प्रपचां र्ून्द्यता' का अथ शही 'धचत्त- र्ृस्त्त तनरोि' है, सासाांररक मनुष्य द्र्ारा आत्मा या आत्म- क्षि तक पहुँचने की पहली र्त शही है धचत्त-र्ृस्त्त-तनरोि अथात्श,् मनः सकांल्पों की रोकथाम।

परांतु, धचत्त-र्ृस्त्तयों या मनः सकांल्पों का तनरोि कैसे ेसभार् है? मर्क्षा द्र्ारा। और मर्क्षा कैसे ेसभार् है? गुरु द्र्ारा। मानर् मर्र्-काल से ही मर्क्षा आर्श्यक है, क्योंफक देह-भार्, जीर्-भार् जन्द्म से ही भासमान रहते ेहैं। प्रपचां में पड़नेके साथ ही तर्रूप में उसकी पहचान कर लेनी होगी, ठीक र्ैसेही जैसे ेजलार्य में पड़ने के साथ ही तैरना, जान लेना होगा अन्द्यथा डूबना ही होगा। इस दृस्ष्ि से जैसा फक महर्ष शमुक्त कहतेहैं, मर्क्षा चररि- तनमाणश का उपिम है। फिर, चररि तनमाणश के मलए अनुर्ासन आर्श्यक है और अनुर्ासन के सयांम-इांहरय-सयांम के रूप में देह-भार् के क्षि में सयांम और सकांल्प-सयांम के रूप में जीर्-भार् के क्षि में सयांमा इांहरय-सयांम भोग-र्ृस्त्त का सयांम और सकांल्प-सयांम (नैततकता या व्यर्हार र्ुता) के गुणों र्ाली मर्क्षा कभी प्रमुखतः िनाजनश के मलए

मुक्तोद्वार 8 नहींहोगी, जैसा फक पाश्चात्य प्रभार् में आज उसका स्वरूप है, र्रन् ्र्ह होगी आत्म-बिो के मलए। आत्म-बिो ब्रह्मानुभर् की भूममका है। ब्रह्मानुभर् के लक्ष्य की हस्ष् से ही पारांपररक भारतीय मर्क्षा में बह्मचय शका र्ानि है। फकांतु, पुनः, चूँफक आत्मा और ब्रह्म, आत्म-बिो और ब्रह्मानुभर् परस्पर मभन्द्न नही हैं, बह्य (आत्मा) ही साध्य है और सिान भी।

धचत्त-रूतृतयों या मन के तनरिो के उपाय को ठीक से समझने के मलए यह जानना चाहहए फक भार् मिा ही मनोमय हैं। मन में ही सारा प्रपचां है, सभी भारों की उत्पत्त्त और गतत है। इस सर्दशा चचांल और सर्थशा मायारी मन के तनरिो हेतु गीता में अभ्यास और रै्राग्य का माग शसुझाया गया है। 'अभ्यास' का अथ शहै अ-मन हो रहने, धचत्त-रूरूत्तयों में तनमलप्शतता का अभ्यासा चैतमसक र्षयों को आत्म-भार् का प्रक्षेप मानकर उनका उपराम आत्मा में ही कर देना। अ-मन हो रहने से कम शभी भार्-स्रून्द्य हो जाता है और इस तरह देह-भार् और जीर्-भार् दोनों ही आत्म देर् में लीन हो जाते ेहैं। 'रै्राग्य' का अथ शहै, ब्रह्म के सत्–धचत्–आनदां स्वरूप से अलग सभी अस्त्त-भारों का त्याग । िलतः ब्रह्म (आत्मा) ही तत्त्तः दृष्व्यि, श्रोतव्य, ज्ञातव्य, मतांव्य, स्जज्ञासतव्य रह जाता है। पुनः, यह भी जानना चाहह फक यद्यर्प अभ्यास और रै्राग्य की चचाशयहाँूँसिान के रूप में की गई है. साध्य 'आत्मा' तक पहुूँचकर रे् भार्-स्वरूपेणे नहींग्राह्य हो पाते। चूँफक 'म'ै आत्मा स्वरूपेण साध्य है, फकसी सिान द्वारा नहीं, आत्मा तक पहुूँचक अभ्यास और रै्राग्य उसी साध्य में र्लीन हो जाते ेहैं, ठीक रै्से ही जैन देह-भार्, जीर्-भार् और ब्रह्म-भार् उनके आिार भार् 'म'ै आत्मा में र्ली होते ेहैं। आत्म भार्त्ता भूमा है, पूण शहै, जबफक अन्द्य भार्रूप अल्प है अपूण शहैं।

अब, यह देखना चाहहए फक यहद आत्मत्त्ता ही आिारभूत आहद मानर् स्वरूप है, तो इसे िारण करना ही उसके मलए परम श्रे्येयस्कर है, उसक परम 'िम'श है। पुनः, चूँफक आिारभूत मानर्-स्वरूप सर्त्श और सर्कशाल एक है, मनुष्य की िम-शिारणा भी सदैर् एकरूप ही होनी चाहहए। आ पृथृक-पृथृक िमों की िारणा मिा मान्द्यताए ूँहैं, स्वरूप र्क्षेप हैं, 'ह नही।ां मनोमय होनेसे रे् राग-द्रेष मूलक भी होंगे। इसमलए ब्रह्मानुसिांान जो िम शका मूल साध्य है, रे्बिाक होंगे,े प्रकार् के बदलेओंकार र्ाहहकाय।ें इततहास में िमों के बीच सघांष शके मूल में यही बात है। इसमलए रे् कभी र्श्र्–म शकी पिाता नही ांरखते। र्श्र्–म शका आिार केर्ल सहज मानर् स्वरुपर्ता या आत्मत्त्ता है। इस दृस्ष् से 'र्श्र्–म'श केर्ल मानर् िम'श के रूप में सभांर् है।

जैसा फक महर्ष शमुक्त कहते ेहैं, मानर् स्वरूपत्त्ता का प्रथम प्रकाश्य तत्र् है- आनदां । मनुष्य सहहत सारा चेतन जगत् ्आनदां की खोज में तनकली एक र्र्ा जीर्न-यािा है। मनुष्य आनदां के मलए ही सारी चेष्ाए ूँ करता है। ज्ञान, मतांव्य, स्जज्ञासा सभी आनदां को लक्षक्षत करतेहैं। इांहरय, मन या बुद्धि के द्रारा बाह्य आनदां अल्प है, र्ह सुख (सु-ख) है, सिान-जन्द्य है और इसमलए अतनर्ायतशः दुःख द्रारा पररसीममत है। इसमलए 'भूमा' ही र्ास्तर्क आनदां का आश्रय है। हीइांसीमलए ईश्र्र है, सार्भशौम र्श्र्- िम शहै, भगर्द् िम शहै। ब्रह्म को सत्–धचत्,् आनदां स्वरूप कहने का पररभार्षक अथ शही है-सदोंह के अभार् में र्ह सत् ्है, अज्ञान के अभार् में र्ह धचत् ्है, र्र्ा (रै्राग्य) के अभार् में र्ह आनदां है, दूसूरी ओर, अन्द्य भार्-क्षिे, 'म'ै आत्मा पर ऱ्त शका स्वरूप होनेसे

मुक्तोद्गार 9 सदोंह, अज्ञान और र्िर्ी से भरपूर है, इसमलए हर्ूँसत्–्धचत्–्आनदां की खोज सदैर् एक मृगृतृषर्ूणा सात्रबत

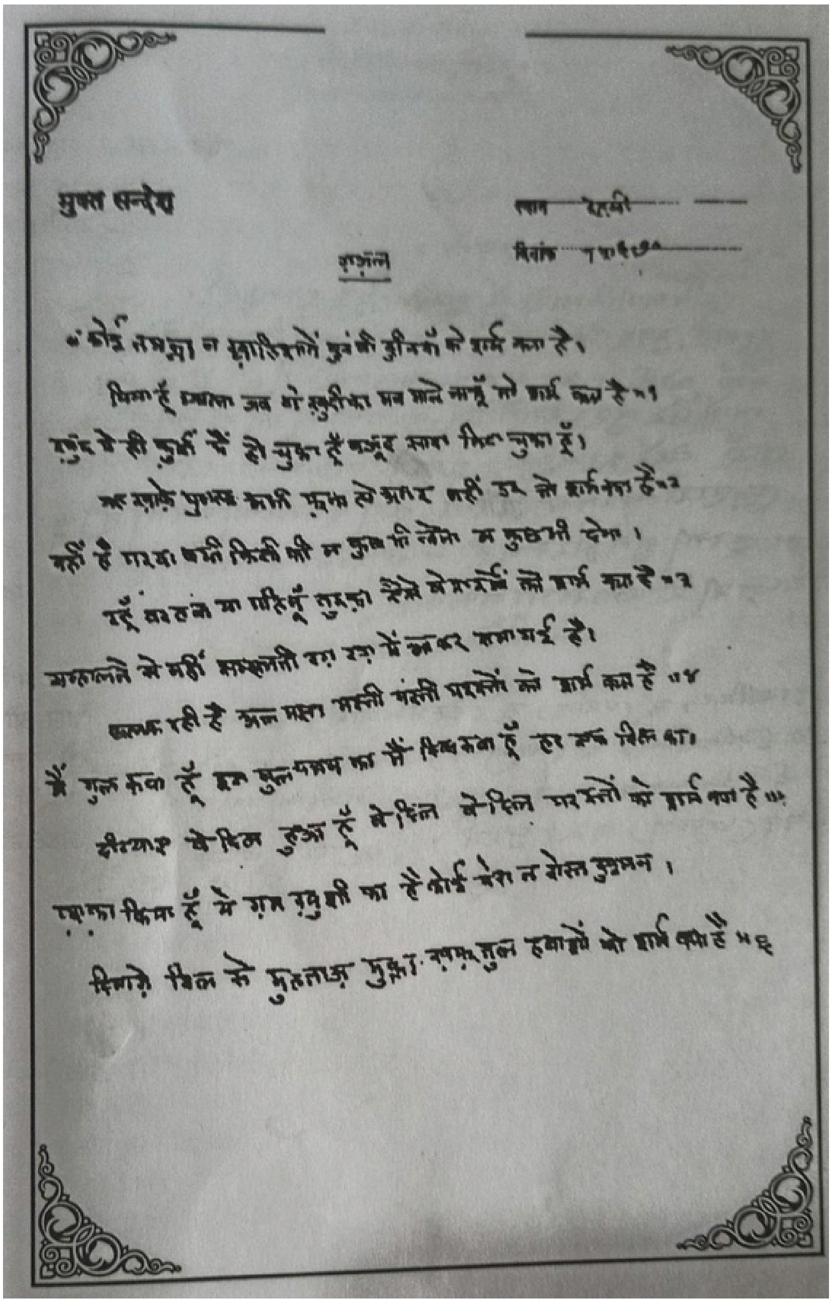
होती

है।

महर्ष शमुक्फ़के मद्धेंारों की कुछ मुख्य बातों को एक िम में रख कर समझानेका प्रयास
फकया है। तनःसदोंह यह अत्यतां सक्षांक्षप्त और तनतातां अपयाप्शत है। उनके सारगमभतश र्क्तव्यों की सही ग्राह्यता तो उन्द्हीांकी लय में चलते ेहुए उनके र्ि्चारों का ग्रहण है। जो िैयपूशर्कश ऐसा करेंगे ेर्े तनश्चय ही उनकी र्ैचौररक गहराई और सिानागत आध्यास्त्मक लस्धियों में भागीदार बन सकेंगे।

इतत !

(डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय)



मुक्त सन्देश

स्थान देहली

दिनांक [illegible]

ग़ज़ल

कोई तमन्ना न ख़्वाहिशें [illegible] के शर्म का है।

मिला है [illegible] अब तो [illegible] तो शर्म का है ॥१

[illegible] हो चुका हूँ [illegible] चुका हूँ।

[illegible] नहीं डर तो शर्म का है ॥२

नहीं है [illegible] किसी की न [illegible] न कुछ भी देना।

[illegible] तो शर्म का है ॥३

[illegible] नहीं [illegible] कर [illegible] गई है।

[illegible] को शर्म का है ॥४

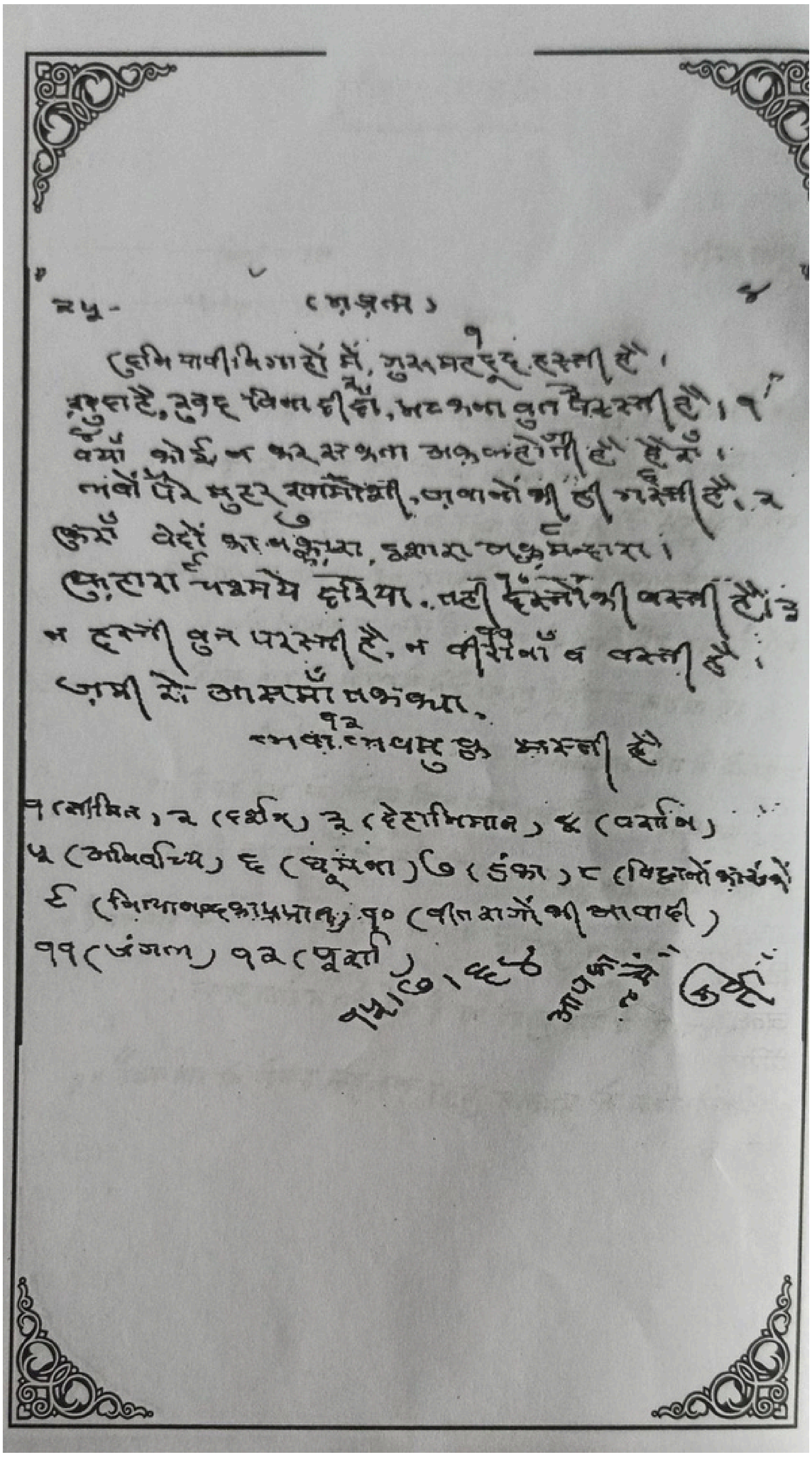
[illegible] रही है [illegible]

मैं [illegible] हूँ [illegible] का मैं [illegible] हूँ [illegible]

[illegible] हुआ हूँ [illegible] को शर्म का है ॥५

[illegible] हूँ [illegible] है कोई [illegible] न दोस्त दुश्मन।

[illegible] को शर्म का है ॥६



२५- (ग़ज़ल) ४

हिमायती दिगाहों में, गुज़मरदूद हस्ती है।
ख़ुदा है, तुबद खिलाड़ी हो, मटअला बुत परस्ती है। १
यहाँ कोई न करअरअला अकलहोती है हैं मँ।
लबों पैर मुहर ख़ामोशी, ज़बानों भी ही गस्ती है। २
कहाँ वेदों का अक्सा, कुरान का कुमरा।
तिलावा पचमये इरिया, यही दैमनों की बस्ती है। ३
न हस्ती बुत परस्ती है, न वीरानों व बस्ती है।
जमी से आसमाँ तक का।
१२ जवा जयसू का मस्ती है

१ (साकित), २ (दर्शन) ३ (देशाभिमान) ४ (वर्तमान)
५ (अनिर्वचनीय) ६ (चूमना) ७ (डंका) ८ (विद्वानों ...)
९ (मिथ्याभक्ति ...) १० (बीतरागों की आवादी)
११ (जंगल) १२ (पूरी)

१५।७।१९८०
आपका ...

र्षय-सूची

॥ श्री गणेश्ायनमः ।।

॥ श्री गुरुरे् नमः ॥

卐 नारायणोपननषद् 卐

ॐ अथ पुरुषो ह र्ै नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजेयेतत। नारायणात् ्प्राणो जायतेमनः सर्ेस्न्द्रयाणण च। खांर्ायुज्योततरापः पृधृथर्ी र्ींश्र्स्यारररणी। नारायणाद् ब्रह्मा जायते। नारायणाद् रुरो जायते। नारायणाद् इन्द्रो जायते। नारायणात् ्प्रजापततः प्रजायते।

नारायणाद् द्र्ादर्ाहदत्याः सर्े रुराः सर्े ्ेर्सर्ः सर्ाणशण भूतातन सर्ाणशण छन्द्रामांस नारायणादेर् समुत्पद्यन्द्ते। नारायणात् ्प्रर्तन्द्शते। नारायणेप्रलीयन्द्ते।

अथ तनत्यो नारायणः। ब्रह्मा नारायणः। मर्श्र् नारायणः। र्श्र् नारायणः। कालश्र् नारायणः। हदर्श्र् नारायणः। र्ींहदर्श्र् नारायणः। ऊध्र्ं ्ंच नारायणः। अिश्र् नारायणः। अन्द्तबहशहश्र् नारायणः।

नारायण एर्ेदां सर्ं ्ंयद्भूत ्ांयचच भव्य ्ांतनष्कलकाी तनरञ्जनो तनर्र्कशल्पो तनराख्यातः र्ुद्र्ी दैर् एको नारायणो न द्र्र्तीयोऽस्स्त कस्श्र्त्।् य एर् ्ांर्ेदे स र्ींष्णुरेर् भर्तत स र्ींष्णुरेर् भर्तत।

ॐ र्ास्न्द्तः ! र्ास्न्द्तः !! र्ास्न्द्तः!!!

1.नाहां प्रकार्: सर्स्शय

नाहं प्रकाशःसवस्त्यि योगमायासमावृतः।
मूढ़ोऽयंनामभजानातत लोकोमामजमव्ययम्॥

(गीता 7/25

शब्दाथ ि- भगर्ान श्रीकृष्ण कहते ेहैं फक योगमाया से ढका हुआ में सबको प्रकामर्त नहींांहोता। अजन्द्मा अर्ननारी मुझ आिमा को मूढ़ पुरुष नहींांजान पाते।

भावाथ ि- अज्ञान सेआचछाहदत समस्त र्ईश्र् का 'म' ैं सबको प्रकि नहींांहूँ, इसमलए जन्द्म-मरण रहहत, सर् शके सर् शमुझ भगर्ान को अज्ञानी मनुष्य अनुभर् नहीं कर सकते।

लक्ष्याथ– 'साक्षाद्परोक्षाद् ब्रह्म' इस श्रुतत के कथनानुसार भगर्ान कहते ेहैं फक सम्पूण शचराचर के मलए 'म' ैं अपरोक्ष हूँ अथात्श ्फकसी सेछुपा नहींांहूँ, बस्ल्क प्रकि हूँ, परन्द्तु योगमाया का ढक्कन लगा हुआ है, इसमलए सब देख नहींांपाते। योगमाया कहते ेहैं नीचे ऊपर के ढक्कन को। स्जस प्रकार

'म ैंअरु मोरर तोरर त ूँमाया।' म–ैंमेरा, त–ूँतेरा ये दोनों नीचे ऊपर के ढक्कन हुए और 'म' ैं आत्मा चेतन के सयोग हो जानेसेनाम हो गया योगमाया। यानी म ैंर्रीर, मेरा र्रीरा त ैंर्रीर, तेरा र्रीरा यह फकतना सुन्द्दर ढक्कन है! इसी के अन्द्दर 'म' ैं आत्मा नाम से प्रमसद्भिगर्ान बन्द्द है और ससांारी जीर् भगर्ान के मलए अनाहद काल से भिक रहा है। कहार्त भी है-बगल में लड़का, र्हर में हढढोरा।

आप भुलान्यो आप में बंध्यो आप ही आप ।
जाको ढ़ूँढत फिरत है सो तू आपहह आप ॥

इसी प्रकार जीर् अपनेआपको साढ़े तीन हाथ का र्रीर मानकर अर्द्द्या की घोर तनरा में सो रहा है। तभी तो गीताकार कहते ेहैं फक-

अश्रद्दधानाः पुरुषा धमस्त्यिास्त्य परंतप ।
अप्राप्य मां ंतनवतन्तिमृत्युसंसारवत्मतिन ॥

अथात्श ्श्रद्धा, र्र्श्र्ास सेरहहत पुरुष सर् शके सर् श'म' ैं आत्मा को न प्राप्त करके बार-बार जन्द्म-मरण के चि में पड़ता है और प्राप्त कौन करता है-

श्रद्धावांल्लभतेज्ञानं तत्परः संयतेन्द्न्यिः ॥

ज्ञान, सिान-चतुष्यि के अन्द्तगतश सबसे मुख्य सिान 'श्रद्िा' है। श्री मानसकार भी कहते ्हैं फक -

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धात्तवश्वासरूत्तपणौ ।
याभयां ्त्तवना न पश्यन्द्न्त मसद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ्।।

(रामायण बाल.)

व्यर्हाररक जगत् ्में भी श्रद्िा त्रबना कोई भी काय शमसद् निहीांहोता तब भगर्ान का ममलना तो असम्भर् ही है। इसमलए हृदय में श्रद्िा आ जाने से बाकी सब सिान अपनेआप ही आ जाते ्हैं। श्रद्िा का र्ास्तर्र्क अथ शहोता है गुरु और र्ेदान्द्त र्ाक्य पर ग्रूि र्ि्श्र्ास। पहला र्ि्श्र्ास तो गुरु (आचाय)श पर होना चाहहए और दूसूरा श्रुतुत-स्मृतृत, सर्ास् र्ि्ेदान्द्त पर।

अब प्रश्न होता है फक गुरु के क्या लक्षण होते ्हैं? यू ्ूँ्तो आजकल गुरुओ ्ांका बाजार लगा हुआ है। सभी गुरु अपनेआपको ज्ञानी तथा मसद् होनेका र्ि्ज्ञापन करते ्हैं। इसके अततररक्त गुरु का पहहचानना भी कोई सरल नहीांहै, अर्पतु कहठन है।

त्तवधध हररहर कत्तव कोत्तवद बानी। कहत साधु महहमा सकुचानी ।।
सो मो सन कहह जात न कैसे। साठा वणणक मणण गुण ठगन जैसे ्॥

(रामायण बाल.)

स्जन गुरुओ ्ांद्वारा आत्म कल्याण होता है उन गुरुओांका लाभ भगर्ान की कृपा से ही होता है। भगर्ान और गुरु का अन्द्योन्द्याश्रय सबांि है। भगर्ान की कृपा सेगुरु और गुरु की कृपा से भगर्ान ममलते हैं और सत्य भी है, एक पहलू के दो नाम गुरु कहो अथर्ा भगर्ान। अब प्रश्न होता है फक भगर्ान की कृपा कब होती है और कैसे ् जाना जाय फक इसी गुरु के द्र्ारा मेरा आत्म कल्याण होगा? इसका समािान यह है फक स्जस समय हृदय में आत्म कल्याण के मलए मछली के समान तड़प पैदा हो जाय, यही भगर्ान की कृपा का स्र्रूप है, स्जसे ्फक र्ेदान्द्त र्ास् में 'ब्रह्म स्जज्ञासा' कहतेहैं।

'अथातो ब्रहान्द्जज्ञासा ॥'

(ब्रह्म सिू 2/1)

सिूकार भगर्ान व्यास कहते ्हैं फक कुछ भी करना–र्रना जब र्ेष नहीांरह जाता तब अन्द्त में आत्म कल्याण के मलए हृदय में ब्रह्म स्जज्ञासा पैदा होती है। उस समय कोई न कोई महान पुरुष प्राप्त हो जाता है और उसके र्ि्नश से अपनेआप स्र्भार्तः धचत्त का णखचांर् होता है, उसके पास बैठैनेपर धचत्त कल्पनारहहत हो जाता है एर् ्ांर्ि्लक्षण आनन्द्द का अनुभर् होनेलगता है। तब समझना चाहहए फक यही र्ास्तर्र्क गुरु है और इसी के प्रसाद से मेरा आत्म कल्याण तनःसदेंाह होगा। परन्द्तु मन का णखचांर् तथा धचत्त की तनर्र्कशल्पता का अनुभर्

सास्त्र्क हृदय को ही होगा, राजसी तामसी को नही।ां ऐसे गुरु के प्रतत नारायण भार् होना अत्यार्श्र्यक है, नर भार् नही।ां

यस्त्य देवे ेपरा भन्द्क्तयथिा देवे ेतथा गुरौ ।
तस्त्यैतेकधथता ह्यथाः प्रकाशन्तेमहात्मनः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।

(श्र्ेताश्र् 6/23)

अथात्श ्जो पराभस्क्त देर् भगर्ान में होता है र्ही भार् आचाय शगुरु में भी हो तब उस महापुरुष का कथन फकया हुआ आत्मा का उपदेर् भली-भातूँत आत्म स्जज्ञासुके समझ में आता है, तभी आत्म कल्याण होता है। क्योंफक नर (जीर्) से कल्याण नहींांहोता, नारायाण द्र्ारा ही कल्याण होता है। जबफक जीर् स्र्य ांअस्स्तत्र्हीन है तब दूसूरे का कल्याण क्या कर सकता है। भगर्ान गीताकार कहते ेहैं फक-

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कन्द्श्चद्यततत मसद्धये । यततामत्तप मसद्धानां ंकन्द्श्चन्मांवेत्तत्त तत्त्वतः ॥

(गीता 7/3)

अथात्श ्हजारों मनुष्यों में कोई आत्म कल्याण के मलए यत्न करता है और यत्न करने र्ालों में भी कोई तत्र् से मुझको जानता है। इस श्लोक में सहर्स्र्षु र्धद आया है स्जसका अथ शहजारों यानी अनन्द्त होता है। मसद्यि का अथ शहोता है ज्ञान प्रास्प्त के मलए और तत्त्र्तः का अथ शहोता है 'म'ैं से। भार् यह है फक अनन्द्त मनुष्यों में कोई 'म ैंब्रह्म हूँ' इस ज्ञान मसद्धि के मलए यत्न यानी सािन करता है और सािनजन्द्य ज्ञान मसद्र्ी मेंभी कोई श ्'म ैंहूँ' इस प्रकार से जानता है कहने का मतलब यह है फक 'अहां ब्रह्मास्स्म' म ैंब्रह्म हूँ, यह ज्ञान ही तत्त्र्तः अथा सािनजन्द्य है। र्ास्त्र् मेंइसको ब्रह्मानुसिांान (ब्रह्म की खोज) कहते ेहैं। म ैंब्रह्म हूँ, ऐसा जानना भगर्ान को जानना नहींांकहा जा सकता। 'अहां ब्रह्मास्स्म' (म ैंब्रह्म हूँ इस सािनजन्द्य ज्ञान से अज्ञान का नार् होता है। इसी को ज्ञान दीपक कहते ेहैं। यथा -

सोहमन्द्स्त्म इतत वृतृत अखंडा। दीप मशखा सोई परम प्रचंडा ।।

(रामायण उ..)

क्योंफक, यह भी सतोगुण जन्द्य अध्यास है। 'म ैंदेह हूँ' यह देहाध्यास तमोगुण जन्द्य है। 'म ैंजीर् हूँ" यह जीर्ाध्यास रजोगुण जन्द्य है। 'म ैंब्रहा हूँ" यह ब्रह्माध्यास, सतोगुण जन्द्य है। इसमलए र्स्तुतः भगर्ान को जानना यह है फक स्जस 'म'ै देर् में त्रिगुणात्मकजन्द्य तीनों भार् अथर्ा अध्यास इत्याहद सभी का अभार् है र्ह 'म'ैं भगर्ान है। 'म ैंदेह हूँ' इस अध्यास का नाम कम शजगत् ्है। 'म ैंजीर् हूँ' इस अध्यास का नाम उपासना जगत् ् है। 'में ब्रह्म हूँ इस अध्यास का नाम ज्ञान जगत् ्है।

रैगुण्यत्तवषया वेदा तनस्त्रगुण्यो भवाजुनि ।
तनद्विन्द्वो तनत्यसत्त्वस्त्थो तनयोगिेम आटमवान् ्।।

(गीता 2/45)

अजुनश तुम अथात्श ्'म'ै तीनों गुणों से परे तनद्र्शन्द्द्व, तनत्य, सत्र्स्थ तनयोग एर् ांआत्मर्ान हो। क्योंफक, तीनों अध्यास 'म'ै के त्रबना कभी भी मसद् निहींांहो सकते। 'म'ै सबको मसद् किरता है, 'म'ै को कोई भी मसद् निही ां कर सकता। श्रुतत कहती है फक 'दृष्ट्रेर्ष्टिारिं न पश्येत्'् अथात्श ्दृस्ष्कि े रष्टाि को दृस्ष् निहीं देख सकती।

येन सवं ंत्तवजानीयात् ्तत्केन क त्तवजानीयात् ्।।

(रूहृद, उप.)

भार् यह है फक जो सर् शका ज्ञाता है, उसका जालनेर्ाला दूसूरा कोई नही।ां इसमलए भगर्ान कहते ेहैं फक- 'कस्श्चन्द्या ांऐरेन तत्त्वतः।' अथात श ्अनेकों ज्ञातनयों में से कोई ही तत्र् से जानता है। तत्र् से जाननेका मतलब यह है फक म ेको कुछ भी न मानकर म ैको 'म'ै ही जानना, यही तत्र् से भगर्ान को जानना है। माननेऔर जाननेदोनों के भार् मभन्द्न-मभन्द्न होतेहैं। जो मानता है, उसको मन कहते ेहैं और जो जानता है उसको 'म'ै (आत्मा) कहते ेहैं। मानना मन का िम शहै, जानना आत्मा का िम शहै। जहा ूँतक कुछ भी माना जाय र्हा ूँतक मन है। यानी म ैबहा हूँ यहाूँतक मन है, परन्द्तु जो बहा को भी जानता है, उसका नाम 'म'ै है और र्ही में 'म'ै हूँ। इस प्रकार के जाननेको ही तत्र् से जानना कहते ेहैं। इसी का नाम सहजपद, कैर्ल्यपद, सहजार्स्था, सहजानन्द्द, सहज सनेह तथा भगर्ान की भररत है।

राम भगतत धचंतांमणण सुंदर । बसैगरुड़ जाके उर अंतर ।
परम प्रकाश रूप हदन राती । नहहं ंकछु चहहय हदया घृत् बाती ।
पावन पवति वेव पुराना । राम कथा रुधचराकर नाना ।
मरमी सज्जन सुमतत कुवारी । ज्ञान त्तवराग नयन उरगारी ।
भाव सहहत जो खोजैप्रानी । पावै ैभगतत मणण सब सुख खानी ।
सो स्त्वतंर अवलम्ब न आना । तेहह आधीन ज्ञान त्तवज्ञाना ।।

परन्द्तु -

भगतत स्त्वतंरं सकल सुख खानी । बबन सत्संग न पावहहं ंप्रानी ।
भगतत तात अनुपम सुख मूला । ममलहह जो संत होहहं ंअनुकूला
संत त्तवशुद्ध ममलहहं ंपरतेहीं ं। धचतवहहं ंराम कृपा कर जेही ॥
बबमल ज्ञान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगतत उर छाई ॥

(रामायण 3.)

फिर भी र्ीचार र्ाहिका में पररभ्रमण कीस्जए।

जे ज्ञान मान बबमत तव भव हररणण भगतत न आवरी ।

ते पाइ सुर दुलुभि पदावत्तप पतत हम देखत हरी ।।

(रामायण उ.)

भार् यह है फक- हे प्रभो! जो ज्ञान के मान में उन्मत्त होकर तुम्हारी भर् हरणण भस्क्त का आदर नहीांकरते,े उनको दुलुभश ज्ञान पद यानी अहां ब्रह्मास्स्म (म ैंब्रह्म हूँ इस पद को प्राप्त करके भी इस पद से धगरते ेहम देखते हैं। क्योंफक अहां ब्रह्मास्स्म (म ैंब्रह्म हूँ यह रूरृत्त ज्ञान है और जहा ूँपर इस अध्यमसत ब्रह्म भार् का भी अभार् हो जाय 'म'ै ही रह जाय, सोई भगर्ान की भर् हरणण भस्क्त है अथर्ा कृतकृत्य पद है, परन्द्तु यह पद सिान जन्द्य नही,ां बस्ल्क कृपा जन्द्य है।

दुलुभिो त्तवषयात्याको दुलुभं तित्त्व दशनिम् ्।

दुलुभि सहजावस्था सद्गुरोः करुणां ंबबना ।।

(महोप, 4/77)

श ्तब तक र्षयों का त्याग तुलभश, तत्र् का दर्नश, सहजार्स्था इस भार् में उन्मत्तता एर् ांप्रमार् अथात् होना सम्भर् है। क्योंफक, म ैंबहा हूँ, यह दुलुभश है जब तक फक सद्गुरु की कृपा न हो। म ैंबहा हूँ (अहां ब्रह्मास्स्म) सिान जन्द्य भार् है और सिान का िल सदैर् अतनत्य होता है, इसमलए इसमें अमभमान एर् ांप्रगार् होना श ्

स्र्ाभार्क है। क्योंफक, स्जसका उत्थान है उसका पतन भी अर्श्य है। स्जस प्रकार जीर् भार् में पतन था अथात् अपनेआपको जीर् मानकर कता-शभोक्ता, सुखी-दुःखी, नरकी-स्र्गी, ठगमनागमन इत्याहद मानता है, यही पतन का रूरूप है और महान पुरुषों के सत्सगां तथा सर्ास्के र्चार द्र्ारा उत्थान रूरूप अहां ब्रह्मास्स्म इस पद का बोि होता है फक म ैंसत्,् धचत्,् आनन्द्द, अखण्ड, अनन्द्त, अजन्द्मा, अजर, अमर, अद्रैत, सत्य, सनातन, व्यापक बहा हूँ। परन्द्तु यह भार् सत्सगां एर् ांसर्ास्अथर्ा सामर्ेदोक्त महार्ाक्य से तत्र्ममस 'म'ै में लाया गया, फकन्द्तु कालान्द्तर में कभी जा भी सकता है। परन्द्तु, स्जस 'म'ै पर देह भार्, जीर् भार्, ब्रह्म भार् इत्याहद सभी भार् अिाररत है अथर्ा यू ूँकहो फक स्जस देर् में समस्त भार्ों का अभार् है, र्ही अतनर्चशनीय पद, र्ास्तर्क तत्र्, सर् शका सर् श'म'ै हूँ। यथा -

त्तवशेष दशतिन आटम भाव भावना त्तवतनवृत्ततः ।

(योग दर्नश सू, कैर्ल्यपाद)

महर्ष शपतजांमल कहतेहैं फक रूरूप का पूण शबोि हो जाने पर आत्मभार् की भार्ना की तनरृत्त हो जाती है। इस प्रकार जो जानना है यही तत्र् से भगर्ान को जानना है। यह पद इतना सरल है फक इसकी सरलता ही कहठनाई है। यहाूँपर कुछ श्रुततया ूँआयी हैं, इनको भी सुनो - -

नायमात्मा प्रवचनेन लभयो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभयस्त्तस्त्यैष आत्मा त्तववृणुते तनुं स्त्वाम् ्॥

भार् यह है फक आत्मा प्रर्चन द्र्ारा, बुद्धि द्र्ारा, श्रर्ण द्र्ारा प्राप्त नहीं । स्जज्ञासु का हृदय जब आत्म दर्नश के मलए मछली के समान तड़पताहै अथर्ा व्याकुल होता है तब तत्काल ही भगर्ान आत्मा सर् शका 'म'ै अपना स्रूप प्रगि कर देता है। और भी सुनो -

नायमात्मा बलहीनेन लभयो न च प्रमादात्तपसो वाप्यमलंगांत् ्।
एतैरुपायैयतितेयस्त्तु त्तवद्वांस्त्तस्त्यैष आटमा त्तवशते ेब्रह्मधाम ।।

(मु.उ 3 / 2 / 4)

भार् यह है फक बलहीन पुरुष को आत्मानुभर् कभी नहींहोता। बल र्धद से यहाँूस्जज्ञासा बल समझना चाहहए। अिम स्जज्ञासा को ही आत्म कृपा भी कहते ेहैं, क्योंफक फकसी और ने बिांा हो तो कोई खोलेजबफक अपने सकांल्प से स्य ांही बिांा है तब अपनेआप ही छूि भी सकता है।

अथ िअत्तवद्यमान जातनय संसृतृत नहहं ंजाय गोसाईं ।
बबन बांधेतनज हठ शठ परवश परयो कीर की नाईं ॥

(र्नयपत्रिका पद 20)

जीवं ंकल्पयते ेपूवं ंततो भावान्पृथृग् ्त्तवधान् ्।

(गौडपदीय का.)

अथात्श ्साक्षात् ्परमात्मा ही अपनेआप में सबसेप्रथम जीर् भार् की कल्पना करता है फक म ैंससांारी जीर् हूँ, क्योंफक जीर् की कल्पना का कोई आिार भी तो हो। तो र्चार करने पर 'म'ै के अततररक्त दूसूरा कौन होगा? बस, जीर् भार् आतेही सारा प्रपचां भासनेलग जाता है। जीर् भार् के अभार् में जगत् ्का अभार् है और जीर् भार् के भार् में अनन्द्त भार्ों का भार् है यहद महान र्ुि है तो जीर् भार्।

सो माया बस भयऊ गोसाईं। बंध्यो कीर मरकट की नाई ।।

इसमलए अपनेआप पर अपनी कृपा होना अत्यन्द्त आर्श्यक है। गीताकार भगर्ान कृष्ण कहते ेहैं फक -

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव ररपुरात्मनः ।।

(गीता 6/5)

अथात्श ्अपनेआपका उद्धिर अपनेआप ही कर सकता है, दूसूरा कोई नही।ां हूाँ, आचाय शगुरुजन लोग आत्म तत्र् का उपदेर् करते ेहैं, चेतार्नी देते ेरहते ेहैंफक तू भगर्ान आत्मा है। स्थूल, सूक्ष्म कारण तीनों र्रीरों से परे, जाग्रत, स्र्प्न, सुषुस्प्त तीनों अर्स्थाओंका साक्षी, सत्,् धचत्,् आनन्द, पररपूण,श अजन्मा, अजर, अमर समस्त चराचर का 'म'ूँ, परात्पर सर् शका सर्,श सर् शके मलए अपरोक्ष आत्मा है। तीनों काल, तीनों अर्स्थाओंमें एक रस रहने के कारण तू सत् ्है। तीनों काल, तीनों अर्स्थाओ ांके प्रपचां को जाननेके कारण तू धचत् ्है और तीनों काल, तीनों अर्स्थाओ ांमें सर् शको प्रिय है इसमलए तू आनन्द है।

ज्ञात्वा देवं ंसवपाशापहातनः िीणः िीणैः क्लेशैजन्मिमृतूयुप्रहाणणः ।

(श्र्ेता र्. उप. 1/11)

श ्स्जस देर् को जानकर अष्पिार्, पचांक्लेर् से जीर् छुिकारा पा जाता है, सो देर् तू है। अर्द्या, अस्स्मता, राग, द्रेष तथा अमभतनर्ेर् ये पचां क्लेर् हैं और घृणा, र्का, भय, लज्जा, तनदां, कुल, र्ील तथा जातत जीर् के ये अष्पिार् हैं। असत् ्को सत्,् चेतन को जड़, दु:ख को सुख यानी साढ़े तीन हाथ के र्रीर को आत्मा मानना, यही अर्द्या है। रष्िा और दृश्य के िमों को एक जानना, यही अस्स्मता है। इष्ि पदाथ शऔर ई स्जसके द्रारा प्राप्त हो, दोनों के प्रतत जो आसस्क्त है यही राग है और दोनों के प्रतत जो घृणा है यही द्रेष है। अनाहदकालीन परम्परा से स्जस मृतूयु के प्रर्ाह से बड़े-बड़े र्द्रान भी डरतेहैं यही अमभतनर्ेर् है। पचांक्लेर् एर् ां अष्पिार् से हीं छुिकारा पा सकता है, स्जसनेअपनेआप भगर्ान आत्मा को पहहचाना है।

यदा चमविदाकाशंवेष्ेटतयष्यन्त मानवाः ।
तदा देवमत्तवज्ञाय दु:खस्त्यान्तो भत्तवष्यतत ॥

(श्र्ेताश्र्. उप 6/20)

अथात्श ्आकार् को मृगचम शके समान यहद कोई लपिे लेर् ेतब भी आत्मदेर् को जाने त्रबना दु:ख का अन्द्त हो जायेगा, ऐसा असम्भर् है। अर्द्या के चक्कर में पड़कर स्र्य ांपरमात्मा होते ेहुए भी अपनेआपसे भगर्ान को मभन्द्न मानता है। जब तक आत्मा-परमात्मा का भेद है, तभी तक माया का स्स्तत्र् है।

यदा परात्मात्मत्तवभेदभेदेकं त्तवज्ञानमात्मन्यवभातत भास्त्वरम् ्।
तदैव माया प्रत्तवलीयतेऽज्जया सकारका कारणमात्मसंसृतेः ॥

(अ. रामायण रामगीता 18)

अथात्श ्हृदयाकार् मडांल में प्रचडां सूय शके समान र्ज्ञान का प्रकार् हो जानेपर आत्मा-परमात्मा का भेद ममि जाता है। तब तत्काल ही बधांया पुि के समान अपने अधिष्ठान कारण सत्य सनातन ब्रा में हमेर्ा के मलए जीर् आर्ागमन का कारण त्रिगुणात्मक र्कारों के सहहत माया लीन हो जाती है। यथा

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरुत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतांतरन्द्न्त ते ।

(गीता 7/14)

गीताकार भगर्ान कृष्ण कहते ेहैं फक हे अजुनश। मुझ देर् की यह त्रिगुणास्त्मका माया दुरुत्यया है अथात्श ् इसका पार कोई नहींपा सकता। हााँ, मुझको ही यानी 'म' ैं आत्मा को ही जो जान लेते हैंर् इस माया को तर जाते े हैं। मतलब यह है फक अधिष्ठान को त्रबना जानेअधिष्ठान में कस्ल्पत र्स्तु का बिो नही ांहोता। अपनेस्रूप 'म' ैं (आत्मा) में माया उसी प्रकार है जैसे ेरज्जूमें सप,श ठूँठ में र्पर्ाच, सीपी में चादांी तथा मृगतृषृणा में जला

माया, मन, प्रकृतत, जगत, चार नाम एक रूप ।
तब लग ये साचूाँ लगें, नहहं ंजाना तनजरूप ।

माया, मन, प्रकृतत, जगत ये चारों पयायश हैं और एक ही भार् के र्ाचक हैं।

रजत सीप महुँ भास न्द्जमम यथा भानु कर वारर ।
जदत्तप मृषृा ततहुँू काल मंह भ्रम न सकइ कोउ टारर ।।
एहह त्तवधध जग हरर आधश्रत रहई। जदत्तप असत्य देत दुखु अहई ॥
झूठूउ सत्य जाहह बबनु जानें। न्द्जमम भुजंग बबनु रजु ुपहहचानें ।
जेहह जानेजग जाइ हेराई । जागे ेयथा सपन भ्रम जाई ।।

(रामायण बाल. कांिगीता-

इसमलए माया से पार होनेके मलए अपने'म' ैं को भगर्ान जानकर अनुभर् कर लेने पर ही माया से छुिकारा ममलता है, यानी ससाांर सेतर जाता है। अपने'म' ैं को भगर्ान से मभन्द्न मानने पर ही जीर् भार् है और जब तक जीर् भार् है तभी तक ससाांर का बिांन अथर्ा गमनागमन का चक्कर है। यथा-श्रुतुत कहती है-

सवाजिवे ेसवसंस्स्थे बृहन्ते तन्द्स्त्मन् ्हंसो भ्राम्यते ेब्रहाचके ।
पृथृगात्मानं प्रेररतारं च मटवा जुष्ट स्त्वतस्त्ते ेनामृतृत्वमेतत

(श्र्.3.1/8)

अथातश सर् शके प्रेरक भगर्ान को अपनेआपसेमभन्द्न मानकर अनाहदकाल से हांस जीर् ब्रह्म चक यानी ससाांर में भ्रमता रहता है और जब भगर्ान एर् ां अपनेआप 'म' ैं को र्ीर से मभन्द्न करके एकता का अनुभर् करता है, िब यह तत्काल ही समस्त बन्द्िनों से सुि होकर अमृत छ पद (कैर्ल्यपद) यह तलको जाता है। तात्पय शयह है फक स्जतनी उपाधि है माया के ढक्कन ? को सायकल उठाते ेही केर्ल 'म' ैं का 'म' ैं ही रह जाता है। श्रुतत के इस कथन से यही मसद् होता है फक जीर् का आर्ागमन इत्याहद भगर्ान से अपनेआप 'म' ैं को अलग मानने में ही है।

इसमलए -

आत्मा तनत्योऽव्ययः शुद्ध एकः िरेज्ञ आश्रयः ।

अत्तवफियः स्वहम् ्हेतुव्यापिकोऽसंग्यनावृतः ॥

एतैद्विादशमभत्तवद्विानाटमनो लिणैः परैः ।

अहं ममेत्यसद्भ्ाावं देहादौमोहजं त्यजेत् ्॥

(श्रीमद्भागर्त् ्7/7 / 19, 20)

अथात्श ्र्र्चारर्ान पुरुष को चाहहए फक अपनेस्रूप आत्मा के बारह लक्षणों को भली-भातूँत जानकर देहाहदकों में जो अज्ञान से उत्पन्द्न हुआ म,ै मेरापन है, इस भार् का त्याग कर मुक्त हो जाय। अपनेआप 'म'ै के बारह लक्षण कौन से हैं? र्चार कीस्जए-म ैतनत्य हूँ म ैअव्यय अथात् श ्पूण शहूँ, म ैरुद् हूँ, म ैएक हूँ, म ैक्षिेज्ञ यानी देहाहदक प्रपचां का ज्ञाता हूँ, म ैसर् शका आश्रय (आिार) रहहत हूँ, 'म'ै अकत्ता शहूँ, म ैअपने आप स्र्य ांरष्ा हूँ, म ैसर् श का कारण हूँ, म ैव्यापक हूँ, म ैअसगां हूँ (तनलेप हूँ) म ैआर्रण (अज्ञान) रहहत हूँ, इन्द्ही ांबारह लक्षणों को अपने स्रूप आत्मा ('म'ै) में जानकर सुमेरु पर्तश के समान अचल हो जाना चाहहए। अब प्रश्न यह होता है फक अपने आप 'म'ै को फकस प्रकार और कौन-सी युस्क्त के द्र्ारा रीर से अलग करना चाहहए। समािान यह है फक यथा -

स्त्वणं ांयथा ग्रावसु हेमकारः िरेषुयोगैस्त्तदमभज्ञ आप्नुयात् ्।

िेषु देहेषु तथाऽऽत्मयोगै ैरध्यात्मत्तवद् ब्रह्मगततं ांलभेत् ्॥

अथात्श ्हेमकार यानी सोनार, सोनेको गलाकर खोि भाग को त्यागकर स्रण शका खरा भाग ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार जहा ूँतक मेरा कहा जाता है अथर्ा स्जस पदाथ शके मलए मेरा र्धद का प्रयोग फकया जाता है, र् सब खोि है और व्याज्य है। रे्ष जो 'म'ै रह जाता है, र्ही स्रण शके समान खरा अपना आप 'म'ै नाम से प्रमसद्ि भगर्ान आत्मा सर् शका सर् शहै। क्योंफक 'म'ै में कोई िोखा नहीां, बाकी सब में िोखा है, इसमलए उपतनषद् की भाषा में श्रुतत 'म'ै आत्मा को प्रत्ययसार कहती है। प्रत्यय-सार का अथ शहोता है र्श्र्ासपात्र। व्यर्हाररक जगत् ्में भी कोई व्यस्क्त फकसी अपने से उचच पद पर आसीन महानुभार् के मलए जब कभी आर्ेदन-पत्र मलखता है, तो मलखता है फक 'आपका र्श्र्ासपात्र (अमुक)।' यह र्चारणीय र्षय है फक स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों रीर, मन, बुद्धि, धचत्त, अहांकार, चतुष्टय अन्द्तःकरण, प्राण, अपान, समान, धयान, उदान, पचां प्राण, अन्द्नमय, प्राणमय, मनोमय, र्ज्ञानमय, आनन्द्दमय पचां कोर्, पचां कमेस्न्द्रय, पचां ज्ञानेस्न्द्रय इत्याहद क्या ये कभी र्श्र्ासपात्र हो सकते हैं, जबफक ये सभी असत्,् जड़, दुःख रूप, ममथ्या, उत्पत्त्त र्नार्ील एर् ांपररर्तनशस्रूप हैंतो फिर र्श्र्ासपात्र कौन हुआ, 'म'ै अथर्ा ये सब प्रपचां ? जबफक सारा प्रपचां असत् ्और ममथ्या है तब यह र्श्र्ासपात्र कैसे ेहो सकता है। अब प्रश्न यह है फक ये रीराहदक असत् ्और ममथ्या कैसे ेहैं अथर्ा असत् ्तथा ममथ्या का लक्षण क्या है? असत् ्कहतेहैंजो तीन काल में न हो और ममथ्या कहते ेहैं जो उत्पन्द्न होकर नार् हो जाय। रीर बध्ांयापुत्र के समान असत् ्है और पैदा होकर नार् हो जाता है, इसमलए ममथ्या है। यहूँ र्ांका होती है फक रीर को या तो असत् ्कहो या ममथ्या कहो, दोनों बातें कैसे ेहो सकती हैं। समािान यह है फक आत्म देर् में रीर असत् ्है यानी बध्ांयापुत्रर्त् ्है। स्जस प्रकार बध्ांयापुत्र अनुत्पत्त्त रूप है उसी प्रकार प्रपचां अनुत्पत्त्त रूप है, इसमलए असत् ्है

मुक्तोद्धार 24 और र्रीर देर् में र्रीर उत्पन्द्न होकर नार् हो जाता है, इसमलए ममथ्या है। स्जस प्रकार सूय शदेर् में अिंकार नही,ां

इसी प्रकार 'म'ैं देर् में ब्रह्मा से आहद तृणृ पयन्द्शत समस्त प्रपचां नही।ां इसी पर श्री मानसकार जी कहते ेभी है फक -

रजत सीप महूँ भास न्द्जमम जथा भानुकर बारर ।

यदत्तप मृषा ततहुँ काल मंह भ्रम न सकइ कोउ टारर ॥

(रा.बा. दोहा 117)

यहाूँपर जगत् ्प्रपचां को ममथ्या कहा। फिर कहते ेहैं फक -

एहह बबधध जग हरर आधश्रत रहई। जदत्तप असत्य देत दुखु अहई ।।

(रा.बा. काँर गीता)

यहाूँपर जगत को असत् ्कहा है इसमलए र्रीर असत् ्भी है और ममथ्या भी है। अब प्रश्न होता है फक र्रीर पैदा होनेके प्रथम क्या था, भार् रूप था अथर्ा अभार् रूप था यानी सत् ्था या असत् ्था। यहद कहो फक उत्पन्द्न होनेके पूर् शसत् ्था तो सत् ्की तो उत्पत्त्त ही नहीां होती, क्योंफक उत्पत्त्त मानने पर नार् भी मानना पड़ेगा और सत् ्कहते ेहैं जो त्रिकालाबाध्य हो, यानी उत्पत्त्त र्ेनार् से रहहत हो। इसमलए सत् ्मानकर भी र्रीर की उत्पत्त्त मसद्ध निहीांहोती। अचछा, यहद कहो फक र्रीर उत्पत्त्त के पूर् शअसत् ्था तो असत् ्मानकर भी र्रीर की उत्पत्त्त मसद्ध निहीांहोती, क्योफक जो तीन काल में न हो, बध्ांयापुि के समान हो, उसे ेअसत् ्कहते ेहैं। यानी जो है ही नही ांर्ह पैदा क्या होगा। अब यहद कहो फक र्रीर पैदा होनेके पूर् शसत्–्असत् ्दोनों था, तब भी नहीांबनता, क्योंफक एक अर्स्था में सिाक-बिाक पदाथ शकदार्प नहीां रह सकते। कहनेका तात्पय शयह है फक फकसी भी प्रकार से र्रीराहदक प्रपचां की उत्पत्त्त मसद्ध निहीांहोती। अब यहद कहो फक यह जगत् ्प्रपचां भगर्ान ने पैदा फकया तो भी नहीांबनता, क्योंफक प्रश्न यह उठता है फक स्जस भगर्ान ने प्रपचां पैदा फकया र्ह भगर्ान जन्द्मा है अथर्ा अजन्द्मा है। यहद भगर्ान को जन्द्म र्ाला मानो तो भगर्ान नहीां, क्योंफक जन्द्म लेनेर्ाला नार्र्ान होता है और अजन्द्मा मानो तो उससेफकसी का जन्द्म मसद्ध निहीांहोता। इसमलए फकसी भी तरह से 'म'ैं आत्मा के अतततररक्त फकसी का भी अस्स्तत्र् मसद्ध निहीांहोता। इसमलए र्रीर आत्म देर् में असत् ्है और यहद मानतेहो फक र्रीर है, क्योफक यह प्रपचां भासमान है इसमलए मानना ही पड़ेगा फक र्रीर है, तो यह कोई बात नही।ां न होते ेहुए भी बहुत सी चीज ें भासती हैं। उदाहरण के रूप में स्जस प्रकार आकार् में नीमलमा । यद्यर्प आकार् में नीमलमा तीन काल में नहीांहै, परन्द्तु प्रत्यक्ष भास रही है। हाूँ! नीमलमा देर् में नीमलमा है। उसी प्रकार नीमलमा के समान 'म'ैं आत्म देर् में र्रीर नहीांहै। र्रीर देर् में र्रीर है। इसमलए 'म'ैं के जाननेपर र्रीर असत् ्है और र्रीर मानने पर र्रीर ममथ्या है। क्योफक प्रपचां मानने की चीज है और 'म'ैं आत्मा जाननेकी चीज है। तात्पय शयह है फक फकसी भी देर्, काल, र्स्तु को जानने के मलए चलोगे तो जाननेर्ाले के मसर्ाय और कोई भी चीज न ममलेगी। दूसूरी बात यह है फक ढूूँठ में र्प्ाच भासता है, रज्जु ुदेर् में अिंकार के कारण सप शभासता है, मरुस्थल देर् में जल असत् ्होते ेहुए भी समुर उमड़ता हुआ प्रतीत होता है। परन्द्तु, एक बात और है फक जो असत् ्होकर भासता है र्ह स्र्देर् यानी अपनेदेर् में भासता है, र्ेचार करने पर अिार में नहीांभासता। मतलब यह है फक सप शअपने ही देर् में प्रतीत होता है, रज्जू ू

मुक्तोद्वार 25 देर् में नही।ं इसमलए रींराहदक प्रपचां असत् ् तथा ममथ्या होनेके कारण र्ंश्र्ासपिा कभी नहींहो सकते।

यहद

र्ंश्र्ास करने योग्य कोई पदाथ शहै तो 'म'ैं आत्मा ही हूँ, र्ेषे सब में िोखा है। जानने की चीज 'म'ैं है, बाकी सब मानने की। अभार् को माना जाता है। भार् को जाना जाता है। माना हुआ पदाथ शअस्स्तत्र्हीन होता है, जाना हुआ तो अस्स्तत्र् ही है। स्जस प्रकार प्रकार् से ही प्रकार् का ज्ञान होता है, प्रकार् के अततररक्त और फकसी से भी नहीं, इसी प्रकार 'म'ैं से ही 'म'ैं का ज्ञान होता है, दूसूरे से नही।ं इसमलए 'म'ैं आत्मा ही र्ंश्र्ासपिा हूँ। और कहा ूँतक कहा जाय, र्ंश्र् में ऐसी कोई भी र्स्तु नहींजो 'म'ैं के त्रबना मसद् हो जाय। यहाूँतक फक परमात्मा भी 'म'ैं से मभन्द्न हो जाने पर केर्ल कल्पना मि का ही र्ंषय रह जाता है और र्ह भी अस्स्तत्र्हीन हो जाता है, इसमलए 'म'ैं ही र्ंश्र्ासपिा हूँ।

यहद कोई ईश्र्र के सबांिि में प्रश्न करता है फक क्या ईश्र्र है अथर्ा ईश्र्र के अस्स्तत्र् में क्या प्रमाण है?
तो ईश्र्र को मसद् करने के मलए ईश्र्र ही प्रमाण होगा, अन्द्य नहीं, उसी प्रकार जैसे ेप्रकार् को प्रकार् ही मसद् कर सरकता है अन्द्य नही।ं पुनः ईश्र्र अहांगम्य है, इदम्गम्य नही।ं यहद ईश्र्र को इदम् ्यानी 'यह ईश्र्र है' इस भार् से माना जायेगा तो अतनत्य एर् ंनार्र्ान होगा, क्योफक सारा प्रपचां इदम्गम्य होनेके कारण असत्, ् जड़, दुःखरूप अथर्ा परररर्तनशर्ील है। इसमलए ईश्र्र इदम् ्गम्य न होकर अहांगम्य है अथात्श ्'म'ैं ही हूँ स्जसका नाम ईश्र्र, परमात्मा, भगर्ान अथर्ा कुछ भी कहो 'म'ैं के ही पयायश हैं। म ैंको म ैंही देखता हूँ। म ैंको म ैंही जानता हूँ। म ैंका अनुभर् म ैंही करता हूँ। म ैंको मानेया न माने, जानेया न जाने, देखें या न देखें, अनुभर् करें या न करें। हर हालत में, हर काल में, हर अर्स्था में, 'म'ैं के मसर्ाय र्ंश्र्ासपिा दूसूरा कौन हो सकता है।

अहं शब्देन त्तवख्यात एक एव न्द्स्स्थतः परः ।
स्थूलस्त्वनेकतां प्राप्तः कथं ंस्याद्देहकः पुमान् ्॥

(र्ांराचाय शअपरोक्षानुभूतत 31)

अथात्श ्जो 'म'ैं र्ंद करके र्ंख्यात यानी प्रमसद् है और एक ही रूप से सर् शमें स्स्थत है र्ह स्थूल अनेक रूप र्ाला र्ंर कैसे ेहो सकता है। तभी तो श्री मानसकार जी कहते ेहैं फक -

ज्ञान अखण्ड एक सीतावर । माया वस्त्य जीव सचराचर ॥

(रामायण उ.)

अथात्श ्स्जसका ज्ञान अखण्ड है और एक है, र्ंही सीतार्र है। फकतना र्ंलक्षण भार् है। अथात्श ्जो जागत के प्रपचां को जानता है र्ंही स्र्प्न को जानता है, जो जाग्रत और स्र्प्न को जानता है र्ंही सुषुस्प्त के आनन्द्द का अनुभर् करता है। जो तीनों अर्स्थाओंको जानता है, र्ंही तीनों काल को जानता है। कौन सा देर्, कौन सा काल, कौन सी र्स्तु है फक स्जसको में आत्मा सर्स्र्थान से सर् शको न जानूँ। इसमलए म ैंही र्ंश्र्ास पिा सर् शका सर् श साक्षात् ्भगर्ान आत्मा हूँ। इसीमलए भगर्ान कृष्ण कहते ेहैंफक - -

नाहं प्रकाशः सवस्त्यि योगमायासमावृतः ।

मूढ़ोऽयं नामभजानातत लोको मामजमव्ययम् ् ।।

ॐ पूणमिदः शान्द्न्तः !! (भ.गो.अ . 7 श्लोक 25)

2. चचांलां हह मनः

अजुनि उवाच

चंचलंहह मनः कृष्ण प्रमाधथ बलवदृढम् ् ।

तस्त्याहं तनग्रहं मन्ये वायोररव सुदुषु्करम् ् ।।

श्री भगवानुवाच

असंशयंमहाबाहो मनो दुतुनविग्रहं चलम् ् ।

अभयासेन तुकौन्तेयवैराग्येणच गृह्यते े ।।

(गीता 6/34/35)

अजुनश का प्रश्न है फक भगर्न्! ् आपनेजो योग का उपदेर् फकया तथा आत्म धचतांन बतलाया सो ठीक है, परन्द्तु यह मन इतना चचांल, उन्द्मत्त एर् ांबलर्ान और र्ायु से भी अधिक रे्ग र्ाला है फक ऐसेमन का तनरिो श ्असभांर्-सा है। इस प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण भगर्ान कहते ेहैं फक- 'तुम्हारा कहना करना अत्यतां दुष्कर है अथार्त यथाथ शही यह मन तनःसदोंह दुतुनग्रशह है यानी इसका तनरिो कष्ट्साध्य है, परन्द्तु अभ्यास और र्ैराग्य से इसका तनरिो हो जाता है।' भगर्ान के इस कथन पर र्ेचार कीस्जए।

व्याख्या - र्ास्तर् में मन तक ही तो सारा आडम्बर है।

यथा-

न देहो न च जीवात्मा नेन्द्न्यिाणण परंतप ।
मन एव मनुष्याणांकारणंबंधं मिोयोः ।।

(र्र्ेक चूडामणण)

अथात्श ्बिां मोक्ष का कारण न देह है, न इस्न्द्रयूाँ और न जीर्ात्मा है बस्ल्क सर् शका कारण मन ही है। इसी पर श्री मानसकार भी कहतेहैं फक -

योग त्तवयोग भोग भल मंदा। हहत अनहहत मध्यम भ्रम िंदा ॥
जनम मरण जहं लधग जग जालू। संपतत त्तवपतत करम अरु कालू ॥
धरणण धाम धन पुर पररवारू । सरग नरक जहं लधग व्यवहारू ।।
देणखय सुतनय गुतनय मन मांही । मोह मूल परमारथ नाहीं।।

(रामायण अयोध्या.)

नह्यन्द्स्त त्तवद्या मनसोततररक्ता मनोह्यत्तवद्या भववंधं हेतुः ।
तन्द्स्त्मन् ्त्तवनष्टे सकलं ंत्तवनष्टं त्तवजृनूद्म्भतेऽन्द्स्त्मन् ्सकलं ंत्तवजृनूद्म्भते ॥

(महोप. उपतनषद)

अथात्श ्अर्द्या, अज्ञान अथर्ा सुख-दुुःखाहद का कारण मन के अततररक्त दूसूरा कोई नही।ां मन के उदय होने पर प्रपचां का उदय है और अस्त होनेपर प्रपचां का अस्त है। जीर्-ईश्र्र का भेद डालनेर्ाला भी तो मन ही है। गाढ़ी नीदां, मूछाशएर्ां समाधि अर्स्था में मन के अभार् में, सर् शका अभार् हो जाता है। दूसूरे र्धदों में यू ूँकहो फक मन का ही नाम माया है। समस्ष्-व्यिस्ष् भिेदे से मन अथर्ा माया दो नाम हो जातेहैं। समस्ष् का अथ शहोता है व्यापक और व्यस्ष् का अथ शहोता है एकदेर्ी, यानी देह व्यस्ष् जिगत् ्है और समस्त प्रपचां समस्ष् जिगत् ्है। स्जस प्रकार सागर की एक तरांग और अनेक तरांग, इसी तरह चैतन्द्याकार् महासागर में एक र्कल्प और अनेक र्कल्प। र्कल्प का पयायश कल्पना होता है। र्कल्प का स्रूप महर्ष शपतजांमल ने स्पष् बितलाया है। महर्ष शजी सिू मलखतेहैं -

शब्दज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो त्तवकल्पः ।

(योगदर्नश)

अथात्श ्र्धद का तो ज्ञान हो, परन्द्तु र्स्तुका अभार् हो। यानी केर्ल र्धद ही सुनने भर में आर्,े फकन्द्तु ढूँढ़ने पर स्जसका अस्स्तत्र् फकसी भी काल में न ममले,े उसेकहते ेहैं र्कल्प। मतलब यह फक अस्स्तत्र्हीन र्स्तु को ही र्कल्प कहते ेहैं। इसी प्रकार मन, माया अथर्ा ससांार ये श्रोतव्य हैं, प्राप्य नहींहैं। यानी श्रर्ण के र्षय हैं,

मुक्तोद्वार 28 प्रास्प्त के नही।ां तात्पय शयह है फक र्रीर रूपी व्यस्ष्ट् दृस्ष्ट् से एक र्ंकल्प का नाम मन है और समस्त

प्रपचां रूपी

समस्ष्ट् जिगत् ्के अन्द्दर जो अनन्द्त र्ंकल्प हैं, उन समस्त र्ंकल्पों के समूह का नाम माया है। मतलब यह है फक जो कुछ कहना- सुनना, करना–रना है ई सब मन के ही अदांर है और मन ही तक है। इसमलए मन की महहमा का कहा ूँतक र्णनश फकया जाये। आइए, भगर्ान श्री गीताकार के अभ्यास और र्ैराग्य पर र्ंचार करें, क्योफक योगेश्र्र भगर्ान ने अभ्यास और र्ैराग्य से ही मन का पकड़ना बतलाया है और महर्ष शजी भी सूि मलखते ेहैं फक -

योगन्द्श्चत्त वृत्ततत्त तनरोधः ॥

(योगदर्नश 1/2)

श ्धचत्त र्ृत्त्त का तनरिी ही योग है। अब यहाूँपर प्रश्न होता है फक धचत्त का तनरिी क्यों अथर्ा

अथात्

फकसमलए करना चाहहए? महर्ष शजी कहते ेहैं फक-

तविाष्टुः स्त्वरूपेऽवस्त्थानम् ्।।

(योगदर्नश 1/3)

अथात्श ्सािक को धचत्तरष्ट्ा के स्र्रूप में स्थान ममल जाता है, यानी धचत्त के तनरिी में कल्पनाओांका तनरिी हो जाता है और कल्पनाओां के तनरिी हो जाने पर सािक और धचत्त के रष्ट्ा, दोनों का भेदे ममि जाता है। तात्पय शयह है फक धचत्त की समस्त चेष्ट्ाओांको जो तनरांतर देखता है, जानता है तथा अनुभर् करता है, यानी धचत्त का जो साक्षी है, र्ही सर् शका अपना आप 'म'ैं अपना स्र्रूप आत्मा है। इस योग सािक के मलए श्री महर्ष शजी ने धचत्त का तनरिी बतलाया है। यू ूँतो आत्मा से मभन्द्न कुछ है ही नहीां, सर् शकुछ आत्मा है, परन्द्तु समस्त कल्पनाओ ां एर् ांर्ंचारों के र्ाांत हो जाने पर र्ुद्ि स्र्रूप, उपाधि रहहत चेतन 'म'ैं नाम से प्रस्र्ुहित होता है। उस सत्ता पद में सािक स्स्थत हो जाता है। इसमलए, श्री महर्ष शजी के कथनानुसार धचत्त तनरिी की आर्श्यकता है, परन्द्तु यहाूँपर एक बात और ध्यान देनेयोग्य है, र्ह यह फक धचत्त के तनरिी काल तक ही धचत्त रष्ट्ा की अनुभूतत है, र्ेष काल में तो धचत्त ही धचत् ्है। धचत्त के तनरिी का र्ंकल्प भी धचत्त ही तक है। धचत्त का अस्स्तत्र्, आत्मा के अज्ञानकाल तक है तथा अज्ञान का अस्स्तत्र्, आत्म स्जज्ञासा के अभार् में तनहहत है। खैर, इस र्ंषय पर फिर र्ंचार करेंगे।

अब चमलए धचत्त तनरोध के साधन जगत् ्में।

अभयास वैराग्याभयां ांतन्द्न्नरोधः ।।

(योगदर्नश)

अथात्श ्अभ्यास और र्ैराग्य से मन अथर्ा धचत्त का तनरिी होता है। भगर्ान योगेश्र्र श्रीकृष्ण भी यही कहते ेहैं फक 'अभ्यासेन तु कौन्द्तेय र्ैराग्येण च गृह्यते।' प्रथम अभ्यास एर् ांर्ैराग्य का अथ शकरके फिर दोनों की व्याख्या की जायेगी। अभ्यास का मतलब है- 'फकसी भी र्ंषय का पुनः-पुनः यानी बार-बार आर्तनश, पुनरार्ृत्त करना' और र्ैराग्य का अथ शहोता है- 'फकसी भी देर्, काल, र्स्तु का त्याग ।

अब प्रश्न यह है फक धचत्त तनरिो के मलए फकस चीज का अभ्यास और फकसका त्याग करना चाहहए।

समाधान- अभ्यास न करने का अभ्यास, यही तो अभ्यास है और हो का जो त्याग है, र्स्तुतः आत्मा के यह है फक जब तक धचत्त का अस्स्तत्र् है, तभी तक प्रपचां काही है। सात्र् है और धचत्त के अस्स्तत्र् काल तक मन, र्चन, कम शद्वारा धचत के हो त्रबरिो के मलए जो कुछ भी सािन फकया जाता है, उसका िल चचांलता के नार् है, धचत्त का नार् नही।ां धचत्त नार् के दो प्रकार हैं- अरूप नार् और सरूप नार्। सरूप नार् सािन का िल है और अरूप नार् आत्मबोि का िल है। सािन का िल अतनत्य होनेके कारण सरूप नार् अतनत्य है, यानी धचत्त का नार् हमेर्ा के मलए नहीांहोता और अपने स्र्रूप आत्मा को बोि हो जानेपर धचत्त के अस्स्तत्र् का ही नार् हो जाता है। मतलब यह है फक तीन काल में धचत्त है ही नहीां, इसको अरूप नार् कहते ेहैं। इसमलए प्रथम अस्स्तत्र् का त्याग करो। बाद में अभ्यास न करने का अभ्यास करो। यहद करने का अभ्यास करोगेतो र्ह अभ्यास मन र्ाणी का र्ेषय होना और जो मन र्ाणी द्र्ारा होता है र्ह स्थाई नहीांहोता, बस्ल्क अस्थाई होता है, इसमलए भगर्ान कृष्ण के कथनानुसार अभ्यास का अथ शहुआ अभ्यास न करनेका अभ्यास करना, यही अभ्यास है। धचत्त अथर्ा प्रपचां के अस्स्तत्र् का त्याग करना, यही र्ैराग्य है। क्योफक जब धचत्त के अस्स्तत्र् का त्याग ही कर हदया, यनी 'धचत्त है' इस र्ेकल्प (कल्पना) का ही जब त्याग हो गया तो जब धचत्त ही नहीांरहा, तो तनरिो फकसका फकया जायगा और जब र्दाहदक र्ेषय रूप प्रपचां का ही त्याग हो गया, यानी 'प्रपचां है' इस र्ेकल्प का ही त्याग हो गया तो धचत्त जायगा ही कहाँ और फकसमें? इस प्रकार का त्याग ही र्ास्तर्ेक व्याग है और यही सर् शव्याग है। इसी त्याग को श्री मानसकार के र्दों में परम र्ैराग्य कहते ेहैं।

र्ैराग्य दो प्रकार का होता है- एक अपर र्ैराग्य, दूसूरा पर र्ैराग्या जो र्ैराग्य आत्मबोि के प्रथम होता है, उसे ेअपर र्ैराग्य कहते ेहैं और जो बोि के पश्चात् ्होता है, उसे ेपर-र्ैराग्य कहते ेहैं। यथा -

जातनय तबहहं ंजीव जग जागा । जब सब त्तवषय त्तवलास त्तवरागा ।।

यह अपर र्ैराग्य है। और -

कहहय तात सो परम त्तवराणी । तृणृ सम मसद्ध तीन गुण त्यागी ।।

यह पर र्ैराग्य है।

बोि के प्रथम र्दाहदक र्ेषयों के र्ेलास, यानी भोग का व्याग होता है और बोि हो जाने पर र्ेषयों के अस्स्तत्र् का ही व्याग हो जाता है। आत्मानुभर् के प्रथम सत् ्र्ास्् और महान् ्पुरुषों के सत्सगां द्र्ारा आत्मा तनत्य है, जगत् ्अतनत्य है - ऐसे ेर्ेर्ेक एर् ंर्ेचार से प्रपचां में दोष दृस्ष्् पैदा हो जाती है, प्रपचां की नश्र्रता प्रतीत होनेलग जाती है। उस समय ससाांर सेधचत्त णखन्द्न हो जाने पर, जीर् र्ेषय के र्ेलास (भोग) का त्याग कर देता है, र्ेषय का नही।ां इसे ेअपर र्ैराग्य कहते ेहैं। अब यह भी दो प्रकार का होता है- एक सोपाधिक, दूसूरा तनरुपाधिक। सोपाधिक र्ैराग्य का लक्षण यह है फक ससाांर में स्त्री-पुि, िन-कलि अथर्ा धचरकालीन र्ारीररक

मुक्तोद्गार 30 रोग इत्याहद से धचत्त में र्क्षेप पैदा हो जाने से प्रपचां के र्लास का जो त्याग होता है, उसे ेअपर रै्राग्य कहते ेहैं।

परन्द्तु, अपर रै्राग्यर्ान व्यस्क्त के मलए श्रुतत-स्मृतत, सन्द्त-महात्माओ ांने जगत् ्में भ्रमण करने के मलए तनषेि फकया है, क्योंफक स्जन र्षयों के भोग से रै्राग्य हुआ है, रे् सब र्षय अन्द्तःकरण में अभी तक अधिकार जमाये बैठे हैं और जगत् ्प्रपचां में र्चरने से सगां दोष के कारण फिर भी र्षयों में आसक्त हो जाना कोई असभांर् नहीांहै। इसमलए अपर रै्रागी को चाहहए फक एकान्द्त सेर्न करते ेहुए खुष्ठ न्याय के समान अपर रै्राग्य को पकारे्। खुष्ठ न्याय का मतलब यह होता है फक (खुष्ठ कहते ेहैंखूँिे को) स्जस तरह खूँिे को जमीन में गाड़ते ेसमय बार-बार ठोकर मारना और फिर हहलाकर उसकी मजबूती देखी जाती है, इसमलए फक जो भी पशुबाँिा जाय र्ह कही ां उखाड़कर भाग न जाय, इसी प्रकार एकान्द्त सेर्न, सत् ्शास्त्र(र्ेदोन्द्त) का र्चार एर्ां सत्पुरुषों का सत्सगां करते े रहना चाहहए और तनरन्द्तर कोमशश करते ेरहना चाहहए फक शीघ्र से शीघ्र अपनेस्र्रूप आत्मा का बोि हो जाय।

अब तनरुपाधिक रै्राग्य का लक्षण सुनो। रै्राग्य में फकसी तरह की उपाधि अथर्ा धचत्त में र्क्षेप नहीांहै, परन्द्तु अनन्द्त जन्मों का पुण्य उदय होनेपर र्ीतराग अथाशत ्र्रक्त पुरुषों का समागम होता है और सतों की कृपा से बुद्धि में तनत्यातनत्य का र्र्ेके होता है, तब ऐसेर्र्ेक एर् ांर्चार द्र्ारा प्रपचां के भोग से जो रै्राग्य पैदा होता है उसे ेतनरुपाधिक रै्राग्य कहतेहैं। परन्द्तु, ऐसा तनरुपाधिक रै्राग्य त्रबरले ही मनुष्य को हुआ करता है, सबको नही।ां इस प्रकार सोपाधिक एर् ांतनरुपाधिक रै्राग्य आत्मानुभूतत के प्रथम हुआ करता है।

अब पर या परम रै्राग्य का लक्षण सुनो। पर रै्राग्य में, र्षयों के अस्स्तत्र् का त्याग हो जाता है।

तात्पय शयह है फक स्जनको र्षय मानता था र्स्तुतः र्े र्षय, र्षय नही ांहैं, 'म'ैं आत्मा हूँ। देह, इस्न्द्रय, मन, प्राण तथा र्दाहदक र्षय अथर्ा सारा प्रपचां तीन काल में है ही नहीां, 'म'ैं ही 'म'ैं हूँ। जब सर् शमें ही हूँ, इस प्रकार का बोि होता है तो उस समय में आत्मा के अततररक्त, सर् शके अस्स्तत्र् का ही त्याग हो जाता है और जब धचत्त के अस्स्तत्र् का ही त्याग हो गया, यानी स्जसको मन या धचत्त कहते ेहैं, र्ह मन के रूप में 'म'ैं ही हूँ, स्जस तरह जल में तरांग, ऐसी अनुभूतत हो जाने पर भला तनर्ृत्त्त फकसका फकया जाय और कौन तनर्ृत्त्त करेगा। यथा-

पूव िसमाधेरणखलंत्तवधचन्तये दोङ्कारमारं ंसचराचरं जगत् ्।
तदेव वाच्यंप्रणवो हह वाचको त्तवभाव्यतेऽज्ञानवशान्न बोधतः ॥

(अ.रा. रामगीता 48)

अथाशत ्भगर्ान राम, लक्ष्मण जी सेकहते ेहैं फक आत्म-कल्याण के सािक को चाहहए फक तनर्र्कशल्प समाधि मसद्धि के प्रथम सािक ऐसा धचतांन करे फक ब्रह्मा से आहद तृण पयन्द्शत सब कुछ ब्रह्म है। यानी, सर् श'म'ैं हूँ, क्योफक जगत् ्प्रपचां र्ाचय है। प्रणर् 'ऊँ' आत्मा र्ाचक है, जैसे ेआभूषण र्ाचय है, स्र्ण शर्ाचक है। र्स्त्र र्ाचय, िागा र्ाचक है। घि र्ाचय है, ममट्टी र्ाचक है। इसी तरह स्थूल, सूक्ष्म, कारण जगत् ्प्रपचां र्ाचय है और 'म'ैं आत्मा इसका र्ाचक हूँ। अज्ञान दृस्ष्ि में प्रपचां अथर्ा देहाहदक प्रपचां भास रहा है, ज्ञान दृस्ष्ि में नही।ां भगर्ान श्रीराम ने इस प्रकार सरल तथा र्लक्षण सािन धचत्त को तनर्र्कशल्प करने के मलए बतलाया है। यथा -

यथा पुमान्न स्त्वांगेषुमशरः पाण्याहदषुक्वधचत् ्।

पारक्यबुद्धधं ंकुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥

(भाग. 4/7 / 53)

स्जस प्रकार हाथ-पैर, आखूँ-कान, मुख-मर्र इत्याहद सब अगोंं के सहहत होनेपर ही मनुष्य सज्ञां होती है, यानी मनुष्य कहलाता है, जैसे ेऔर सब अंग तो हैं, परन्द्तुएक अंग भी जरा-सा भगां हो जाय तो ई खडांडत मनुष्य कहा जाता है, अगांहीन कहलाता है। इसी प्रकार एक तृणृ को भी भगर्ान से जहा ूँमभन्द्न माना फक भगर्ान खस्ण्डत हो गया। रे्द, र्ास्, सतां, महात्मा गण एर् ंस्र्ानुभूतत से प्रत्यक्ष प्रमाण ममलता है फक परमात्मा अखण्ड है और उपासना जगत् ्में भी यही तनयम है फक कोई भी मूतत शजरा- सी खस्ण्डत हो जानेपर पूजन के योग्य नहीींरहती। यानी र्ास्मिं खस्ण्डत मूतत शके पूजने का अधिकार नहीं है, इसमलए फक परमात्मा अखण्ड है। कहने का तात्पय श यह है फक स्जस तरह व्यस्क्त सब अगोंं के सहहत मनुष्य कहलाता है, इसी तरह समस्त चराचर के सहहत भगर्ान की अखण्डता मसद्होती है। इसमलए 'म'ैं आत्मा सर् शहूँ यह धचतांन अथर्ा तनश्चय काल्पतनक या भार्नात्मक नहीींबस्ल्क र्ास्तर्क है।

यो मां ंपश्यतत सवरि सवं ंच मतय पश्यतत ।
तस्त्याहं न प्रणश्यामम स च मे न प्रणश्यतत ।

(गीता 6/30)

सवभिूतन्द्स्त्थतं यो मां ंभजत्येकत्वमान्द्स्त्थतः ।
सवथिा वतमिानोऽत्तप स योगी मतय वतति े।।

(गीता 6/31)

अथात्श ्जो पुरुष सारे चराचर में मुझ आत्म स्रूप यानी 'म'ैं को अथर्ा सारे चराचर को 'म'ैं आत्मा देखता है, उससेन 'म'ैं मभन्द्न हूँ और न ई मुझसे मभन्द्न है। इस प्रकार जो सर् शमें तथा सर्श एक भार् से, यानी 'म'ैं सब में हूँ और 'म'ैं सब कुछ हूँ, इस भार् से भजता अथात्श ्जानता है ई सब व्यर्हार में र्तशा हुआ भी मुझ में ही र्तशा है। यानी उसकी दृस्ष्मिं व्यर्हार, परमाथ शदोनों है ही नहीं, केर्ल 'म'ैं ही 'म'ैं हूँ।

शनैः शनैरुपरमे द्बुद्धया धृतृतगृहीतया ।
आत्मसंस्त्थंमनः कृत्वा न फकंधचदत्तप धचन्तयेत् ्॥

(गीता 6/25)

अथात् श ्िीरे-िीरे मन को र्षयों से उपराम करे। मतलब यह फक स्जस समय स्जस र्षय में मन जाय, उस समय उस र्षय को र्षय न मानकर अपना स्रूप भगर्ान आत्मा जानना चाहहए। यानी र्षयों के अस्स्तत्र् का त्याग ही कर देना चाहहए। र्षयों से मन का यही उपराम है और मन को परमात्मा में इसी प्रकार स्स्थत करना है और कुछ भी धचतांन न करो स्जस प्रकार सप शके धचतांन से सप शनहीींमरता, बस्ल्क रज्जू ्के ही धचतांन

मुक्तोद्वार 32 से सप शमरता है, इसी तरह धचत्त अथर्ा सप शर्ष्य के धचतांन से र्ष्यों का नार् नहीं होता बस्ल्क 'म' ैं

भगर्ान

आत्मा के ही धचतांन से धचत्त अथर्ा र्ष्य प्रपचां का नार् होता है। यू ूँ कहो फक धचत्त और र्ष्य दो चीज नहीांहै, बस्ल्क 2 धचत्त का ही नाम र्ष्य है। धचत्त ही र्ष्य और र्ष्य ही धचत्त है। स्जस प्रकार मकड़ी अपनेही अदांर से जाला बनाकर अपनेआप उसमें िूँस जाती है. अपनेआप से, अपनेइरल बनकर अपने आप ही मकड़ी के समान िूँस जाता है। इसमलए जहय जाहा ूँपर मन जाय, हर्ाँ-हर्ाँ पर अपनेआपको ही देखो। मन है उड़नेर्ाला, कल्पना है उड़न खिोला और र्दाहदक पाचूँों र्ष्य एरोड्रम यानी हर्ाई अड्डेहैं। इसमलए उड़न-बाज मन के सहहत कल्पना रूपी राकेि तथा र्ष्य रूपी अड्डों को परम र्ैराग्य रूपी एिम बम से भुन दो, खाक कर दो, इनकी हस्ती ममिा दो। मन रूपी गाड़ी के सकांल्प-र्कल्प दोनों चक्के तनकाल दो। चारों तरि की सारी लाइनें किा दो। तभी तो आजादी है, नहीांतो जीर्न की बरबादी है। ऐसी बमबारी से कुछ भी र्ेष नहीांरहता। हर्ाँ, जो र्ेष है, र्ही र्ेष रहता है।

देहामभमाने गमलते ेस्त्वरूपे ेपरमात्मतन ।
यर यर मनोयातत तर तर समाधयः ।।

(पचांदर्ी)

अथात् श ्अपनेस्रूप परमात्मा में देहामभमान गमलत हो जाने पर जहा–ूँ जहा ूँपर मन जाय, हर्ाँ-हर्ाँपर भगर्ान आत्मा के अततररक्त और कुछ है बीक ही नहीांक्योंफक -

एतावानात्मसम्मोहो यद् त्तवकल्पस्त्तु केवले ।
आत्मभृतेृ स्त्वमात्मानमवलम्बो न यस्त्य हह ।।

(भागर्त 11/28/36) अस

अथातश ्यह कैसा आत्म सम्मोह है फक कैर्ल्य, चैतन्द्य घनभूत 'म' ैं में धचत्त का र्कल्प हुआ, जैसे रज्जु ु में सप शका र्कल्प होना। यह रज्जु अ र्ष्यक मोह है। इसी तरह अपनेस्रूप आत्मा से फकांधचत् ्मिा एक तृण अिौ को भी जहा ूँमभन्द्न माना, र्हीांपर आत्मा र्ष्यक मोह आ गया। मतलब यह है फक र्कल्प का कोई न कोई अिार जरूर होता है। रज्जु यहद न हो तो सप शका र्कल्प फकसमें होगा? इसी प्रकार यहद 'म' ैं न होऊूँ तो पचां महाभूत, देह, इस्न्द्रय, मन, प्राण अथर्ा सारे प्रपचां इन सबों की कल्पना फकस पर और फकसमें होगी अथर्ा इनकी कल्पना करने र्ाला कौन होगा? इसमलए सप शका अर्लम्ब यानी अिार 'म' ैं आत्मा ही हूूँ, दूसूरा कोई नही।ां

मनसा वचसा ष्ृ या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्न्द्रयैः ।
अहमेव न मत्तोऽन्यहदतत बुध्यध्वमरजसा ।।

(भार्ा. 11/13 / 24)

अथात् श ्भगर्ान कृष्ण उद्र्ि जी से कहते ेहैं फक उद्र्ि मन, र्चन, दृस्ष्ट तथा इस्न्द्रयों के द्र्ारा जो कुछ भी ग्रहण फकया जाता है, र्ह सब 'म'ैं ेआमा ही हूँ, मुझ से मभन्द्न कुछ भी नहींहै। इसेसरलतापूर्कश तुम समझ लो।

ततनष्ठस्त्य मोोपदेशात् ्।।

(ब्रह्म सूि 1/10)

अथात् श ्सूिकार भगर्ान श्री व्यास जी कहते ेहैं फक सर् शका कारण जो ब्रह्म है उसके जानने र्ाले का ही मोक्ष होता है।

यथा हहरण्यं स्त्वकृतं पुरस्त्तात् ्पश्चाच्च सवस्त्यि हहरण्मयस्त्य ।
तदेव मध्ये व्यवहायमिाणं नानापदेशैरहमस्त्य तद्वत् ्।।

(भाग. 11/28/19)

अथात्श ्जैसे ेपहलेभी सोना बाद में भी सोना, बीच में नाम रूपात्मक जो आभूषण है र्ह भी सोना ही है। इसी प्रकार पहले ेभी 'म'ैं बाद में भी 'म'ैं और बीच में ब्रह्मा से आहद तृणृ पयन्द्शत सारा चराचर, जो आभूषण के समान भास रहा है, यह भी सर् श'म'ैं आत्मा ही हूँ। तात्पय शयह है फक जैसे ेर्स्तु अर्द्यमान यानी न होते ेहुए और भासती है (जैसे–े सप शअर्द्यमान यानी न होते ेहुए ओंकार के कारण भासता है, र्ास्तर् में र्ह सप शतीन काल में नहींहै, असमलयत में रज्जु ुही है जो फक सप शके आकार में भासती है। इसी प्रकार अज्ञान के कारण रज्जु ुमें सप शके समान प्रपचां, जो भास रहा है, सो प्रपचां अथर्ा धचत्त फकसी काल, फकसी अर्स्था में नहींहै, बस्ल्क 'म'ैं भगर्ान आत्मा ही हूँ।

यथा सोम्यैकेन मृनृद्त्पण्डेन सवं ंमृनृमयंत्तवज्ञात᳴᳴ स्त्याद्वाचारम्भणं ।
त्तवकारो नामधेयं ंमृतृतत्तकेत्येव सत्यम् ्॥

(छा 6/1 / 4)

अथात्श ्स्जस प्रकार एक मृत्तका र्पडां को जान लेनेपर ममट्टी से बने हुए समस्त घि आहद पदाथों का ज्ञान हो जाता है (यानी सब ममट्टी ही है)। उसी प्रकार घि आहद र्र्कार तो केर्ल कथन के मलए है, सत्य तो केर्ल मृत्तका ही है।

यथा सोम्यैकेन लोहमणणना सवं ंलोहमयंत्तवज्ञात᳴᳴ स्त्याद्वाचारम्भणं ।
त्तवकारो नामधेयं ंलोहममत्येव सत्यम् ्॥

(छा.ांउ..6 / 1 / 5)

अथात श ्स्जस प्रकार लोहे के एक ि ुकड़े का ज्ञान होनेपर लोहे के बने हुए सभी पदाथों का ज्ञान हो जाता है (यानी ये सब र्स्ाहिदक तो लोहा ही है) उसी प्रकार नाम रूप तो केर्ल र्ाणी के र्ि्कार मिा हैं, सत्य तो लोहा ही है।

यथा सोम्यैकेन नखतनकृन्तनेन
सवकिाणायिसं ंत्तवज्ञात˘˘ स्त्याद्वाचारम्भणं।
त्तवकारो नामधेयं ंकृष्णायसममत्येव
सत्यमेव˘˘ सोम्य स आदेशोभवतीतत ॥

(छा.ंउ..6 / 1 / 6)

अथात्श ्स्जस प्रकार एक नहन्द्ना के ज्ञान से लोहे से बने हुए समस्त खड्ग आहद र्स्ाि का ज्ञान हो जाता है, क्योफक र्स् आहद र्ि्कार तो केर्ल नाममिा र्ाणी पर ही अर्लस्म्बत है, सत्य तो लोहा ही है।

स एवेद˘˘ सवर्म््।।

(छा.ंउ..7 / 25 / 1)

अथात्श ्सर् शर्ही है।

अहमेवेद˘˘ सवर्म््।।

(छा.ंउ..7/25 / 1)

अथात्श ्सर् श'म'ै ही हूँ।

आत्मैवेद ˘˘ सवर्म््।।

(छा.ंउ. 7/25/1)

अथात्श ्सर् शआत्मा ही है।

इन श्रुततयों के कथन से भी यही मसद्‌होता है फक नाम रूपात्मक जो ससाांर भास रहा है, यह केर्ल नाम मिा र्ाणी पर ही अर्लस्म्बत है, इसका कोई अस्स्तत्र् नहीांहै, सत्य तो केर्ल 'म'ै आत्मा ही हूँ। आश्चय शतो यह फक सारा तमार्ा मन तक ही है और यहाँतक फक मन खुद ही तमार्ा है।

मनो श्ृयममदं द्वैतं ंयन्द्त्कंधचत् ्सचराचरम् ्।
मनसो ह्यमनी भावे द्वैतं ंनैवोपलभयते ।।

(गौ.पा.का. अद्वैत.प्र. 31)

श ्जो कुछ भी चराचर द्वैतै है अथर्ा दृश्य है, यह सब मन ही है। मन जब अमनी भार् को प्राप्त हो
अथात्
जाता है तब द्वैत प्रपचां का लेरे् भी नहीांरहता।

आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते ेयदा ।
अमनस्त्तां ंतदा यातत ग्राह्यभावेतद्यहम् ्।।

(गौ.पा.का. अद्वैत.प्र. 32)

अथात्श ्जब सत्य सनातन आत्मा की अनुभूतत हो जाती है, उस समय यह मन सकांल्प नहीांकरता अथात्श ्

सकांल्प और र्कल्प सेरहहत हो जाता है।

तनगृह्यीतस्त्य मनसो तनत्तवकिल्पस्त्य धीमतः ।
प्रचारः सतुत्तवज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः ।।

(गौ.पा.का. अद्वैत.प्र. 34)

अथात्श ्मन के तनग्रह हो जाने पर तनर्र्कशल्प भार् आ जाता है। ई अर्स्था जाननेयोग्य है। यानी कल्पना रहहत अर्स्था में रे्ष क्या रह जाता है, इसे ेजानना चाहहए। परन्द्तु, सुषुस्प्त (गाढ़ी) तनरा में ऐसा नहीांहै क्योंफक, उस अर्स्था में मन अज्ञान में लय होता है। जागने पर कहता है फक आज म ैंऐसा सोया, कुछ पता ही नही ां रहा, यही अज्ञान का रुरूप है। यद्यर्प सोया नहीां, परन्द्तुकहता है फक म ैंसोया। इस अज्ञान में मन लय होता है।

लीयते ेहह सुषुसेतदमभन्गृह्यीतं ं।
तदेव तनभयंब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः ॥

(गौ.पा.का. अद्वैत.प्र. 35)

श ्सुषुस्प्त अर्स्था में मन अर्द्या में लीन होता है। फकन्द्तु तनरिो हो जाने पर ई मन उसमें लीन
अथात
नहीांहोता। उस समय तो सब प्रकार से या सर् शऔर से तनभयश बहा ही रहता है। इसमलए सुषुस्प्त और समाधि में भेद है, क्यो सर् शअगर के तनरिो का ही नाम समाधि है और मन के अज्ञान में लय होने का नाम सुबर्त्त है। सुषुस्प्त अर्स्था तमोगुण का काय शहै, और समाधि रुद् सितोगुण सुषकाय शहै, इसमलए भी सुषुस्प्त और समाधि में अतांर है। दूसूरी बात है फक योधगयों का अक्षय सुख तो समाधि तक ही सीममत है।

मनसो तनग्रहायत्तमभयं सव ियोधगनाम् ्।
दुःखियः प्रबोधश्चाप्यिया शान्द्न्तरेवच ॥

(गौ.पा.का. अद्वैत.प्र.)

योधगयों के योग सिान की पराकाष्ठा अथर्ा समस्त सिानों की पररसमास्प्त धचत्त के तनर्ाकशल्प समाधि की मसद्धि में ही तनहहत है। समाधि में परम् ्तत्र् का बिो, अष्पार् से मुस्क्त, पचां क्लेर्ों से तनर्ृत्त, सर् शदु:खों का क्षय तथा अक्षय र्ास्न्द्त पद की प्रास्प्त है। परन्द्तु, आत्मरे्त्ता पुरुष के आत्म-देर् में सर्कल्प, तनर्ाकशल्प दोनों का र्कल्प तीन काल में है ही नही।ां स्देर् में तो तनभयशता है।

यतो वाचो तनवतन्तिअप्राप्य मनसा सह ।

आनन्दं ब्रह्मणो त्तवद्वान् ्न बबभेतत कुतश्चनेतत ॥

(तैत्तरीय उप 2/4 / 1)

श्रुतत कहती है फक जहा ूँसे मन सहहत र्ाणी लौ आती है यानी मन स्जसका मनन नहीांकर सकता, र्ाणी

स्जसका कथन नहीांकर सकती -

यन्मनसा न मनुतेयेनाहुमनिो मतम् ्॥

(केन.3.1/5)

यद्वाचानभयुहदतः ॥

(केन.3.1/4)

ऐसा जो सत्य सनातन ब्रह्म है, उसके आनन्द को पाकर र्द्र्ान ब्रह्मरे्त्ता पुरुष सर् शसे तनभयश हो जाता

है।

प्रश्न-क्यों तनभयश हो जाता है, यानी फकसी के भय क्यों नहीांकरता?

समाधान-भीषाऽस्त्माद्वातः पवते भीषोदेतत सूयःि।

भीषाऽस्त्मादन्द्ग्नश्चेन्श्चि मृतूयुधावितत पंचंमेतत ॥

(रै्त्तरी.उ. ब. ब. अनु. 9, म.ां 1)

अथात्श ्स्जसके भय से र्ायु चलती है, सूय शउदय होता है, इन्द्र र्षा शकरता है और अस्ग्न काष्ठ को र्हन करती है तथा मृतूयु उत्पन्द्नर्ील पदाथ शको खाने ेके मलए दौड़ता है, सारार्ां यह फक सारा र्श्र् भयभीत होता है, उस सनातनतत्र र्श्रात्मा, सर् शके सर् श'म'ै सर्ााा से अमभव्यक्त ब्रह्म को प्राप्त करके र्द्र्ान फकसी से भी भय नहीांकरता, यानी तनभयश को पाकर तनभयश हो जाता है। स्जस समय मन सकांल्प-र्कल्प से रहहत हो जाता है, उस समय केर्ल तनभयश सत्ता ही रह जाती है। और रै्सेतो -

धचत्तं ंन संस्त्पृशृत्यथं ंनाथााभासं तथैव च ।

अभूतो हहयतश्चाथो नाथाभिासस्त्ततःपृथृक् ।।

(गौ.पा.का. अला.प्र. 26)

श ्धचत्त न फकसी पदाथ शका अथर्ा उस पदाथ शके अथ शको ही कभी स्पर् शकरता है, क्योंफक भासनेर्ाले जो पदाथ शहैं, उनकी धचत्त से पृथक सत्ता नही ांहै। यानी धचत्त से मभन्दन् नही ांहै। सारार्ां यह है फक सारा चराचर ही धचत्त है। चूँफक सुषुस्प्त, समाधि एर् ांमूचछाकशाल में धचत्त के अभार् हो जानेपर न तो पदाथ शका भान होता है और न उस पदाथ शके अथ शका ही भान होता है, अतः, प्रत्यक्ष प्रमाण है फक धचत्त ही सारा प्रपचां है और प्रपचां ही धचत्त है। धचत्त के उदय में प्रपचां का उदय है और अस्त में प्रपचां का अस्त है। इसमलए धचत्त से मभन्दन् प्रपचां तीन काल में है ही नही।ां तब धचत्त फकसका स्पर् शकरेगा? यानी फकसमें और कब तथा क्यों जायेगा? फिर दूसरी बात यह है फक धचत्त भी नही ांहै, यानी न तो धचत्त है और न धचत्त का दृश्य ही है। सारार्ां यह है फक आत्मा का र्ि्कल्प धचत्त है और धचत्त

अथ्थात

का र्ि्कल्प, धचत्त का दृश्य अथात्श ्चराचर प्रपचां है।

तस्मान्न जायते ेधचत्तं ंधचत्तृश्यं न जायते े।
तस्त्य पश्यन्द्न्त ये जाततं ंखेवैपश्यन्द्न्त ते पदम् ्।।

(गौ.पा.का.अ.र्ा.प्र. 28)

इसमलए न धचत्त उत्पन्दन् होता है, न धचत्त का दृश्या धचत्त और धचत्त के दृश्य को जो उत्पन्दन् होना देखते हैं, र्े मानो तनश्चय ही आकार् में पक्षी के चरण धचह्न देखतेहैं। यानी तनरािार सूक्ष्म आकार् में पक्षी के चरण धचह्न नही ांहदखाई पड़ते। परन्दतु, अज्ञानी मनुष्य स्जस प्रकार आकार् में पक्षी के चरण धचह्न देखने ेकी कल्पना करें फक हमको आकार् में पक्षी के चरण हदखाई देते ेहैं। इसी प्रकार फकसी भी अर्स्था में न तो धचत्त है और न धचत्त का दृश्य ही है। फिर कौन है? अरे, र्ही है जो धचत्त का धचत्त है, दृश्य का दृश्य और सर् शका सर् शहै।

प्राण प्राण के जीव के, न्द्जय सुख के सुख राम ।।

(रामायण अयोध्या.)

श्रोरस्त्य श्रोरं ंमनसो मनो यद्धाचोहवाच स उ प्राणस्त्य प्राणः ॥

(के.उ.1/2)

अथातश जो श्रिो का श्रिो है, मन का मन है, र्ाणी की र्ाणी है, यानी जो सर् शका सर् शहै। जैसे- जल के त्रबना तरांग नही,ां तो जल हुआ तरांग का सर्ी तात्पय शयह है फक र्ही उसका सर्स्र् होता है, जो उसे ेमसद् करता है। 'में' (आत्मा) से मभन्दन् कर लेने पर फकसी भी देर्, काल, र्स्तुका अस्स्तत्र् रहता ही नही।ां 'म' ैं से मभन्दन् न धचत्त है, न धचत्त का दृश्य ही है, परन्दतु धचत्त तथा दृश्य (प्रपचां) की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है। स्जस तरह तरांग देर् में तरांग है, जल देर् में तरांग तीन काल में नहीां, इसी तरह धचत्त अथर्ा मन देर् में मन है। आत्म देर् में न मन है और न मन से उत्पन्दन् होनेर्ाले र्ैकस्ल्पक र्िकार रूप दृश्याहदक पदाथ शहै।

अभूतामभतनवेशाद्धध सृशे ेतत्प्रवतति े।

वस्त्वभावं ंस बुद्ध्वैव तनःसंगं ंतनत्तववततिे े॥

(गौ.पा.का. अला.र्ा.प्र. 79)

अथात्श ्एक स्थान से दूसूरे स्थान पर जानेर्ालेमन को स्जस काल में यह बिो हो जाता है फक आत्म सत्ता के अततररक्त और कुछ है ही नहीं, उसी क्षण मन अपने आप स्रूप आत्मा में लिौ आता है। बिोर्ान मन को फिर रोकने की आर्श्यकता नहीांपड़ती। सारार्ां यह है फक अपने आप में, अपनेआप करके, अपनेआपको 'म'ैं से मभन्द्न कुछ भी मानना ही मन है और जब मन बन गया, तब सभी कुछ भासनेलगा। दुतुनया के लोग देह के नार् को [आत्मघात कहते ेहैं। अरे अज्ञातनयों! यह पचांभौततक रीर को फकसी प्रकार से भी नार् कर देनेका नाम आत्मघात अथर्ा आत्महत्या नहीांहै। बस्ल्क, स्रूप आत्मा को आत्मा न जानकर, आत्मा को कुछ भी मान लेना बस यही आत्महत्या है और ऐसा जो करता है र्ही आत्मघाती है। कैसा अचम्भा है। खेल, णखलौना, णखलाड़ी तथा देखने ेर्ाला सब कुछ खुदु ही है और नहीांतो सचचाई अथर्ा ईमानदारी तो यह है फक - -

स्त्वतो वा परतो वात्तप न फकंधचद्वस्तुजायते े।
सवसत्सवसद्वात्तप न फकंधचद्वस्तुजायते े।।

(गौ.पा.का.अ.र्ा.प्र. 22)

अथात्श ्न सत् ्की उत्पत्त्त होती है, न असत् ्ही उत्पन्द्न होता है और न सद्, असत् ्दोनों की ही उत्पत्त्त होती है। यहद सत् ्पदाथ शकी उत्पतत मानोगे ेतो उत्पन्द्न हुआ पदाथ शनार्र्ान होता है। फिर इसे ेसत् ्कैसे ेकहेंगे?े क्योंफक सत् ्र्स्तु त्रिकालाबाध्य होती है और यहद असत् ्की उत्पत्त्त मानोगे ेतो असत् ्बधांया पुिर् ्होता है। यानी जो है ही नहीं, र्ह पैदा क्या होगा। तात्पय शयह है फक फकसी प्रकार से भी फकसी भी देर्, काल, र्स्तु का उत्पन्द्न होना फकसी भी प्रमाण से मसद्ध नही ांहोता। 1. प्रत्यक्ष प्रमाण, 2. अनुमान प्रमाण, 3. श्रुतुतर्ास्य प्रमाण एर् ां4. स्र्ानुभूतत प्रमाण। इन चारों प्रमाणों से जो मसद्ध हो, र्हीं न्द्याय है और र्हीं सार्भशौम मसद्धान्द्त है। दूसूरी चीज यह है फक सत्,् असत् ्और सत्–असत् ्दोनों, यहद इनका जन्द्म माना जाय तो माया देर् में है। माया का अधिष्ठान आत्म देर् में नहीांहै। क्योंफक, माया का अथ शहोता है अज्ञान, यानी सत् ्देर् में सत् ्का जन्द्म नहीां, सत् ्के अज्ञान देर् में सत् ्का जन्द्म है। असत् ्देर् में असत् ्का जन्द्म नहीां, असत् ्के अज्ञान देर् में असत् ्का जन्द्म है। इसी तरह सत्–असत् ्देर् में सत्–असत् ्का जन्द्म नहीां, बस्ल्क सत्–असत् ्के अज्ञान देर् में सत्–असत् ्का जन्द्म माना जा सकता है।

सतो हह मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः ।
तत्त्वतो जायते ेयस्त्य जातंतस्त्य हह जायते े॥
असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते ।
बंध्या पुरो न तत्त्वेन मायया वात्तप जायते े॥

(गौ.पा.का. अद्रैत.प्र. 27, 28)

जैसे ेरज्जु ुका सप शरज्जु देर् में न सत् ्है, न असत् ्है और न सत्–्असत् ्दोनों है। रज्जु के अज्ञान देर् में सप शसत् ्भी है, असत् ्भी है और सत्–्असत् ्दोनों भी है।

इन्द्रि मायामभः पुरुरूप ईयते े॥

(बृ.ृ3.2/5/19)

इन्द्र माया करके अनेक रूप िारण करता है। माया को श्रुतत अजा नाम से प्रततपाहदत करती है।

अजामेकां लोहहतशुक्लकृष्णां बहवीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।।

(श्रे्ता.उप. 4/5)

अथाब्ा् ्जो जन्म रहहत हो उसे ेअजा कहते ेहैं।

अजो होको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोऽन्यः ॥

(श्रे्.3.4/5)

श ्अपनेअनुरूप ही लोहहत (लाल), रुुक्ल (सिेद), कृष्ण (काला) र्णर्शाली, सत्–्रज-तम तीन गुण अथात्र्ाली प्रकृतत कभी भी जन्म न लेनेर्ाली अजा प्रकृतत माया को एक अज (अजन्मा) जीर् सेर्न करता हुआ भोगता है और दूसूरा अज (अजन्मा) ईश्रर त्रिगुणास्त्मका प्रकृतत माया को त्याग देता है। इस श्रुतत प्रमाण से जीर्, ईश्रर तथा प्रकृतत तीनों अजन्मा है। सारार्ां यह है फक फकसी काल में फकसी का भी जन्म नहीांमसद्धहोता। रे्दान्द्त र्ास्मिें इसको ही 'अजातर्ाद' कहते ेहैं।

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा होका भोक्तृभोगाथयुक्ता ।
अनन्तश्चाटमा त्तवश्वरूपोह्यकतािरयंयदा त्तवन्दतेब्रह्ममेतत् ्॥

(श्रे्.ेउ.1 / 9)

अथाब्ा् ्ईश्रर सर्ज्ञश है, जीर् अल्पज्ञ है। ईश्रर समथ शहै, जीर् असमथ शहै। ईश्रर अकता शएर् ांअभोक्ता है, जीर् कत्ताश-भोक्ता है। ईश्रर एक है, जीर् अनेक है। यह सब होनेके बार्जूदू ये तीनों अजन्मा हैं और अजन्मा होने से तीनों सत् ्हैं। सन् ्होने से तीनों धचत् ्हैं और धचत् ्होने से ये तीनों आनन्द्दरूप हैं। इस प्रकार इन तीनों को जो सत्,् धचत्,् आनन्द्द रूप अद्र्तीय सनातन ब्रह्म आत्मा अपना आप, साक्षात् ्अपरोक्ष 'म'ैं जानता है, र्ह कृतकृत्य हो जाता है। यानी तीनों को मसद्धकिरने र्ाला कौन? सर् शका सर् श'म'ैं, ऐसा जानकर कृताथ शहो जाता है। सारार्ां यह है फक स्जस करके जो मसद्धहोता है र्ह मसद्धहोने र्ाला पदाथ शमसद्धकिरने र्ाले ेसे मभन्द्न नहीांहोता।

अब यहा ूँपर र्ींचारणीय र्षिय है फक जीर्, ईश्रर, प्रकृतत को मसद् किौन करता है? जीर् का म,ैं ईश्रर का म ैंया प्रकृतत का म ैंइन तीनों में जो 'म'ैं है र्ह कौन है? अरे भाई, र्ह र्ही है जो जीर् को अल्पज्ञ मानता है, ईश्रर को सर्ज्ञश मानता है और प्रकृतत को नाना नाम रूप जगत् ्मानता है। परन्द्तु जो सर् शको मानता है, उसे ेकौन मानता है? जो सर् शvec aD देखता है, उसे ेकौन देखता है? अतः, सर् शके मानने र्ाले का मानने र्ाला दूसूरा नहीांं, सर् शके जाननेर्ाले का ज्ञाता दूसूरा कोई नहीांं, सर् शके देखनेर्ाले का दृष्ट्िा उससेमभन्द्न कोई नही।ां इसमलए जीर्, ईश्रर और प्रकृतत इन तीनों में जो सत् ्का सत् ्है, धचत् ्का धचत् ्है तथा आनन्द्द का जो आनन्द्द है, र्ह कौन है? र्ह 'म'ैं है।

अब प्रश्न होता है फक 'म'ैं क्या है?

यो मामेवमसंमूढो जानातत पुरुषोत्तमम् ्।
स सवत्तिवद्धजतत मां ंसवभिावेन भारत ।।

(गीता 15/19)

अथात्श ्जो ज्ञानर्ान मुझको ही यानी अपनेआप 'म'ैं को ही पुरुषोत्तम 'म'ैं जानता है, र्ह सर्रूशप 'म'ैं का र्ेत्ता, सर्भशार् से मुझ परमात्मा को ही भजता है। इसमलए 'चचांल ांहह मनः कृष्ण' अजुनश के इस प्रश्न का उत्तर भगर्ान ने इस प्रकार सेहदया फक 'अभ्यासेनतु कौन्द्तेय र्ैराग्येण च गृह्यते।' यानी मन के अस्स्तत्र् का जो त्याग है, यही र्ैराग्य है और अभार् रूप मन के मलए कुछ भी न करना ही अभ्यास है। हाूँ, अपने को जीर् मानते ेहो तो मन के मलए कुछ करो और मरो और यहद म ैंको 'म'ैं ही (आत्मा) जानते ेहो तो न करो न मरो। मस्त रहो।

3.तस्मात्सर्ेषु कालेषु

तस्त्मात्सवेषुकालेषुमामनुसु्त्मरयुध्यच।

मटयत्तपत्मिनोबुद्धधमामे वैष्यस्त्यसंशयम्।।्

(गीता 8/7)

भगर्ान् ्अजुनश को उपदेर् दे रहे हैं फक तू मुझे सर्कशाल में भज। सर्कशाल में भजन करना क्या है? आज सुबह जब सोकर उठे तो उस समय घड़ी में क्या बजा था? करीबन चार बजे ेहोंगे। जब चार बजा था उस समय म ैं था फक नहीं? था। क्या प्रमाण है? अरे, उस र्क्त में न होता तो चार बजा था उसे ेकौन देखता। फिर चार से पाचूँ, पाचूँ से छः, छः से सात बजा। काल का इतना रे्ग है फक क्षण-प्रततक्षण भर्ष्य र्तमशान हो रहा है और र्तमशान भूत हो रहा है। अभी हूँ फक नहीं, क्या प्रमाण है? देख रहा हूँ और र्ाम को पाचूँ बजे ेरहूँगा फक नहीं, हूँतब भी रहूँगा। स्र्प्न काल में रहता हूँ फक नहीं? रहता हूँ। यहद म ैंन रहूँगा तो स्र्प्न का साक्षी कौन होगा फक स्र्प्न देखा, उस समय कोई और रहता है क्या? नहीं, म ैंही रहता हूँ। म ैंस्र्प्न में भी रहता हूँ और जाग्रत में भी रहता हूँ। जो म,ैं जैसा म ैंऔर स्जस प्रकार म ैंजायत अर्स्था में रहता हूँ र्हीांम,ैं रै्सा ही म,ैं उसी प्रकार म ैंस्र्प्न अर्स्था में और जो म,ैं जैसा में स्र्प्न में, रै्सा ही में, र्हीं में, सुषुस्प्त अर्स्था में। जैसा म ैंसत् ्रूप से, रै्सौ ही धचत् ्रूप से और उसी प्रकार आनन्द्द रूप से म ैंसदैर् तीनों काल, तीनों अर्स्था में हूँ, तो फिर म ैंहूँ इसमें तो कोई र्कां नहींहै। भाई देखो, जब पहले ेभगर्ान को जान लोगे तब तो उनका स्मरण करोगे। कोई ऐसा िाइम है, स्जसमें म ैंन रहूँ। कोई ऐसी र्स्तु है, स्जसको म ैंन देखें। म ैंसर्कशाल में हूँ, सर्अशर्स्था के प्रपचां को जानता हूँ, देखता हूँ और परम प्रर्य हूँ। इसमलए सर्कशाल में रहने र्ाला हूँ 'म'ैं। यह देह नहीं, पचां भौततक र्रीर, मलगां र्रीर आहद नही।ां यह तो नार्र्ान है। तब भगर्ान का स्मरण सर्कशाल में रहने र्ाली चीज जो आत्मा है, इससे इसी का सर्कशाल में स्मरण हो सकता है।

इस श्लोक की जो व्याख्या की जा रही है, इसका यही अथ शहोगा और अन्द्य जो अथ शहोगा र् सब अनथ श होगा। इसके अततररक्त दूसूरा अथ शहो ही नही ांसकता। आत्मा में आत्मा का ही सर्कशाल में स्मरण हो सकता है, अनात्मा का नही।ां इसमलए यहद र्द्र्ान हो तो रे्दों-र्ास्त्रों का प्रमाण लो और यहद अपढ़ हो, पढ़े-मलखे नहींहो तो युस्क्तयों का प्रमाण लो और यहद श्रद्ालिु हो तो महान पुरुषों के र्ाक्यों को मानो- जो 'म'ैं से मभन्द्न है, र् भगर्ान नही।ां यह सुप्रीम किोश का िैसला है फक 'म'ैं अपनेस्र्रूप आत्मा से जो मभन्द्न है, र् भगर्ान नहींहै। यहद मभन्द्न मानते ेहो तो तुम्हारी बुद्धि तुम्हें िोखा दे रही है। जो 'म'ैं से मभन्द्न है र् भगर्ान नहींहै, यह तनश्चय करके बताया गया है। स्जसे तीन प्रमाण प्रमाणणत करे र्हीं सत्य माना जाता है। साढ़े तीन हाथ का भगर्ान नहीं, हड्डी, चमड़ा, मासां का िुकड़ा नहीं, इससे परे आत्मा। 'म'ैं र्हीं चैतन्द्य ब्रह्म है।

स्र्ामी जी, स्मरण का क्या स्र्रूप है? सर्कशाल में स्मरण कैसे ेकरें?

भगर्ान कहते ेहैं फक सर्कशाल में मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। भैया! ससांार के स्जतने भी धचतांन हैं, रे् धचतांन धचतांनीय हैं। ससांारी पदाथों का धचतांन होता है, परन्द्तु भगर्ान अधचत्ांय हैं। अधचत्ांय का धचतांन मन से नहीांहोता, बुद्धि से नहीांहोता। अधचत्ांय का धचतांन, मन र्ाणी का र्ेषय नहीांहै। देखो, यह मन है, इसको कौन जानता है? 'म'ै जानता हूँ। 'म'ै ही मन का अनुभर् करता हूँ, तो 'म'ै का मन कैसे ेअनुभर् करेगा? मन से परे म ैका स्मरण होता है, स्जस प्रकार प्रकार् करके प्रकार् देखा जाता है। उसी तरह म ैकरके म ैका अनुभर् होता है।

एवं त्तवधं त्वां ंसकलात्मनामत्तप स्वात्मानमात्मात्मतया त्तवचिते ॥

भागर्त् ्10/14/24

स्जस तरह प्रकार् सेप्रकार् देखा जाता है, उसी प्रकार म,ै से म ैका धचतांन होता है। भगर्ान मन, र्ाणी का र्ेषय नही ांहै। भगर्ान मन सेपरे, र्ाणी से परे, बुद्धि से परे है। तो उस भगर्ान का धचतांन मन से कैसे ेहो? स्र्ामी जी, धचतांन का क्या रु्रूप है? भैया देखो, जो धचत्त द्र्ारा धचतांन और स्मरण होता है र्ह धचतांन, स्मरण म ै(आत्मा) का नहीांहै। इस बोि में तो कोई कसर नही ांहै फक म ैसस्च्चदानन्द्द आत्मा हूँ, पररपूणश हूँ। अच्छा, अब स्मरण फकसका करोगे?े (स्र्ामी जी ध्यानमग्न हो जातेहैं), बस, यही स्मरण है। ठोस, क्योंफक म ैआत्मा हूँ। सर्कशाल में अस्स्तत्र्ान म ैआिमा हूँ। भूत, भर्ष्य, र्तमशान तीनों काल में, जायत, स्र्प्न, सुषुस्प्त तीनों अर्स्थाओांमें, म ैअस्स्तत्र्ान आत्मा हूँ। इस तनश्चय में तो कोई कमी नहीांहै। अब ऐसी क्या चीज है, स्जसके धचतांन और स्मरण का र्कल्प करते ेहो। जब इस डण्डे को यह तनश्चय हो गया फक म ैडण्डा नहीांहूँ, म ैलकड़ी हूँ, तो म ैलकड़ी हूँ, म ैलकड़ी हूँ इसकी माला िेरने की क्या जरूरत है। जब इसे ेपूणश बोि हो गया फक में आत्मा हूँ, तो यह तनश्चय सर्कशाल में, सर्कशाल के मलए हो गया। अब क्या यह प्रयास मसद्ध है या अपने आप है। बस, सहज भार् में आ गया। भगर्ान का यह कथन क्या सािारण कथन है। यह तो रु्भार् का कथन है। सहजार्स्था है, न जीर् भार् है, न ब्रह्म भार् है, कुछ नहीांहै। तो ऐसा जो स्मरण है र्ह सर्कशाल में होगा फक एक काल में? सर्कशाल में। जब तुम ब्राह्मण हो, तो क्या तुम ब्राह्मण हूँ, ब्राह्मण हूँ करके जप करते ेहो या जब आखूँ बन्द्द करके बैठते ेहो तब ब्राह्मण रहते ेहो, उसी तरह इस तत्र् का यही बोि हो जानेसे फक 'म'ै आत्मा सत् ्हूँ, धचत् ्हूँ और आनन्द्द रु्रूप हूँ। इसका स्मरण है।

जाग्रन तनिा त्तवतनमुक्तिा सा स्त्वरूपन्द्स्स्थततः परा ॥

फकसी भी र्ेषय का अनुभर् तुम जाग्रत में करते ेहो या सुषुस्प्त में या जाबत और सुषुस्प्त से परे अर्स्था में। धचत्त की चचांलता का नाम है जायत और धचत्त के लय का नाम है सुषुस्प्त। मन की चचांल अर्स्था में और र्क्षक्षप्त अर्स्था में सुन ही नहीांसकते और मन के लय अर्स्था में भी सुन नहीांसकते, यहाूँतक फक कोई भी काम नही ांहो सकता। अब इन तीनों अर्स्थाओ ांमें भगर्त् ्स्मरण नही ांहोता और सहजार्स्था इससे परे की अर्स्था है। अहतनशर् रु्रूपस्थ होकर ही युद्ध करोगे,े रु्रूप से र्लग होकर नही।ां रु्रुपस्स्थतत का नाम ही भगर्त् ्स्मरण है। यही एक रस स्स्थतत है भैया, जो त्रबना बनाए अपनेआप बनी है। तुम्हें कुछ नहीांकरना है। खैर, मान लो फक तुम र्द्र्ान हो, र्चारर्ील हो, सत्सगी हो, र्ेषय को समझते ेहो, परन्द्तु जो त्रबल्कुल र्चार करने

मुक्तोद्वार 43 र्ाले नही ांहैं, स्जनकी बुद्धि मदां है तो र्े भी तो स्र्रूप में स्स्थत हैं। अरे, क्या नारायण साक्षात् ्परमात्मा भी

स्र्रूप से अलग होते ेहैं। उनको प्रयास की क्या जरूरत होती है? क्या उनको भी मै नारायण हूँ, परमात्मा हूँ ऐसा स्मरण करना होता है? तुम सदैर् त्रबना प्रयास ही स्र्रूपस्थ हो, जायत अर्स्था में स्र्रूपस्थ होकर व्यर्हाररक जगत का पालन करते ेहो, स्र्प्नार्स्था में स्र्रूपस्थ होकर स्र्प्न का अनुभर् करते ेहो और सुषुस्प्त में स्र्रूपस्थ होकर सोते हो। गमी, खुर्ी, सोना, सपना देखना आहद सभी काम स्र्रुपस्स्थतत में ही करते ेहो। कोई नई चीज नहीांबताई जा रही है। जहाूँ पहुूँचना है र्हीांखड़ा हूँ। स्जसेदेखना है उसे ेह देख रहा हूँ। यह मस्तों के लतीिे हैं।

अब कसर कहा ूँपर रहती है। बस 'अरे' तनकालना है। ये भारी पहाड़ है, क्योफक सब कुछ समझनेपर भी एक तो र्ेश्र्ास नहीांहोता। फिर भी र्ास्तर्ि का प्रमाण हदया जा रहा है परन्द्तु, परन्द्तु है। अनाहदकालीन अभ्यास के कारण समझ में नहीांआता। यहद, सोचने ेलगो फक आत्मानन्द्द प्राप्त करना सािन का र्ेषय नहीांहै तो यों ही कैसे ेहमको प्राप्त होगा या यों ही कैसे ेप्राप्त हो गया, इतना कहठन तत्र् त्रबना प्रयास के यू ूँूँही कैसे ेममलेगा या ममल गया। बस, इतनी र्ाताां करने सेही जहा ूँसेचलेथे ेर्हीांआ गये।

मुह्यन्द्न्त यद्वत्मतन वेदवाहदनो ब्रह्मादयो ह्येष मभनत्तत्त मे मततम् ्।।

(भागर्त् ्7/5/13)

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धात्तवश्वासरूत्तपणौ ।

याभयां ंत्तवना न पश्यन्द्न्त मसद्धाः स्वान्तःस्त्थमीश्वरम् ्।।

(रामायण बाल.)

अभी परसों-नरसों की बात है फकसी स्जज्ञासू ने कहा- स्र्ामी जी! आपने तो इतनी तपस्या की है, तब बोि हुआ है और हम लोग तो कुछ फकये नहीांहैं। भैया ऐसा न समझो। यह तो अपना-अपना भाग्य है। एकता के कारण कभी-कभी हम बता देते ेहैं फक हमनेयहाूँयहाूँतपस्या की, हहमालय में इतनेहदन रहे, अमरकांिक में तपस्या फकये आहद। एकता के कारण हम छुपा कर नहीांरखते। हमनेतो कुछ नहीांफकया, ऐसा न कहना, नहीांतो जहा ूँसे चले ेथे े र्हीांआ जाओगे। कोई-कोई स्जदांगी भर कमाते हैं, फिर भी पेि नहीांभरता और कोई मकान बनाते–ेबनाते ेनीर्ां में िन का हण्डा पा जाते ेहैं। इसके चक्कर में तुम मत पड़ो। बड़ी र्ेधचत्र बात है, र्ाताां करते ेही सब फकया कराया चौपि 'अरे' भर न आनेपाये। आया तो सब फकया कराया बांिाढार हो जायेगा। जो है सो है, जैसे ेहो र्ैसेही रहो। बनो कुछ न, यह र्ेकल्प उठाते ेही क्यों हो, जबफक तुम सनातन ब्रह्म हो। क्या भगर्ान भी कभी ऐसा र्ेकल्प करता है फक भैया हम कैसे ेभगर्ान, हमनेतो कुछ फकया कराया नही।ां यहद कुछ करने से कोई भगर्ान होता है तो र्ह भगर्ान नहीांहै। भगर्ान का यही महत्र् है फक त्रबना कुछ फकये ही भगर्ान है। व्यर्हाररक जगत् ्की बात है। क्या बड़ा आदमी कुछ करता है। उसके गद्दी में बैठै-बैठे ही काय शहोता रहता है। तो फिर 'म'ैं सस्च्चदानन्द्द भगर्ान आत्मा हूँ। मेरी महत्ता का कोई अन्द्त नहीांहै। जब तुम स्र्य ांस्र्तः मसद्, स्र्तः स्र्रूपस्थ हो तो फिर अपने आपको िेिकू-खचेडू क्यों मानतेहो। श्रुतत कहती है-

जाग्रन तनिा त्तवतनमुक्तिा सा स्त्वरूपन्द्स्स्थततः परा ।

(उपतनषद)

यदा न लीयते ेधचत्तं ंन च त्तवक्षिप्यते पुनः ।
अतनंगंन मनाभासंतनष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ।।|

(गौ.पा.का. अद्वैत प्र. 48)

स्जस समय धचत्त का लय न हो और धचत्त र्क्षप्त न हो, दोनों से रहहत जो अर्स्था है, 'अतनगांन् ्मना भासांतदा तत् ्काले ेतनष्पन्दन् तद् ब्रह्म' अथातश स्जस समय धचत्त का लय न हो और धचत्त र्क्षक्षप्त न हो, क्योंफक लय, र्क्षेप से रहहत अर्स्था ही स्र्रूपस्स्थतत हैं। सभी जीर्ाोर गाय-बैल, कूकर-सूकर सभी स्र्रूपस्थ हैं। भगर्ान की यही तो युस्क्त है। काल्पतनक ससाांर में जो व्यक्त करना पड़ता है।

जब अजुनश युद् किरेगा तो उसकी र्रूत्त स्मरणाकार होगी या युद्िाकार, दोनों काय शएक साथ नहीांहो सकते। र्षय गहन आ गया है, इसको दूसूरी तरह से समझायगें। तुम यह ध्यान ही क्यों देते ेहो फक हमें स्मरण करना है। तुम तो ऐसा समझो फक स्मरण देर् में स्मरण है, स्र्रूप देर् में स्मरण नहीांहै। सब भगर्त् ्स्र्रूप ही है और यही आत्मधचतांन है। जहााँ'अरे' आया फक मन आ गया। बस, 'अरे' तनकालना है। बाकी चीज सब बनी बनाई है। कही ांप्रचण्ड र्ायु सेआकार् भी कभी र्क्षक्षप्त होता है, इसी तरह तुम अपनेस्र्रूप में रहो। जब तुम स्र्रूपस्थ होनेके मलए सिान करते ेहो, कोमर्् करते ेहो तो लाखों स्जदांगी व्यतीत हो जाती है, परन्द्तु फिर भी र्हीांके र्हीं।ां जब तुम चौबीस घिां समाधिस्थ हो, सारा चराचर समाधिस्थ है, इतनेपर भी तुम सिान करते ेहो, आश्चय शहै!!! और क्या कहें? अभी हमको देख रहे हो तो प अपने आप में देख रहे हो और अपनेआपसे देख रहे हो, तब देखना कहा ाँऔर सुनना कहा ाँहै। जब स्र्रूप स्थान सेदेखो तब क्या र्ास्तर् में कुछ हो रहा है, जो कुछ भी हो, भगर्ान का स्मरण मन से नहीांहोता, मन से स्मरण अ तो माया का होता है। सब धचतांन कहठन है। इसमें कल्पना करनी पड़ती है, क परन्द्तु भगर्ान के धचतांन में कल्पना की जरूरत नहीांहै, र्ह अपनेआप है बना बनाया है। सबसे सरल है आत्म धचतांन। फकसी प्रकार का धचतांन न करना ही आत्म धचतांन है। मेरा स्मरण भी कर और प्रर्चन भी सुन, घर में झगड़ा हो तो झगड़ा भी कर और स्मरण भी कर, दुकान का काम भी कर और मेरा स्मरण भी कर, यह सब साथ-साथ ही होना चाहहए। यह सब र्ैसा ही होता है, जैसेम ैंबता रहा हूाँ। इस स्स्थतत में जो कुछ काम होता है र्ह स्र्रूप से मभन्द्न नहीांहै। मभन्द्न सोचोगे ेतो काय शमें र्िध-तनषेि हो जायेगा। भगर्ान का समत्र्योग है।

सुख दु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्त्व नैव पापमवाप्स्त्यमस ।।

(गीता 2/38)

तस्त्मात्सवेषु कालेषु मामनुस्त्मर युध्य च ।

मय्यत्तपति मनोबुद्धधमामेवैष्यस्त्य संशयम् ्।।

(गीता 8/7)

सहजावस्था, सहजसमाधि, सहजानन्द, परम समाधि ये इसके पयायश हैं।

एतन्मतं ंसमाततष्ठ परमेणे समाधधना ।
भवान् ्कल्पत्तवकल्पेषु न त्तवमुह्यतत कहहधिचत् ्॥

(भागर्त 2/9 / 36)

समाधि चाहे तनर्र्कशल्प हो या सर्र्कल्प, यह कृत्रिम है, मन की है। धचत्त की स्स्थरता से राग नही ंऔर धचत्त की चचांलता से द्रेष नही,ं इसी का नाम परम समाधि है और यही भगर्ान का सतत् ्धचतांन है। यहद धचत्त के मलए डण्डा लेकर दौड़तेहो तो अपनी महत्ता खोकर ही करते ेहो। यहद लहर के पीछे सागर दौड़ता है तो सागर की महत्ता नष्हो जाती है। जब लहर का पता लगाओगे ेतब मालूम होगा फक सागर में ही उसकी उछलकूद है। इसी तरह यहद मन के पीछे सिान रूपी डण्डा लेकर दौड़तेहो तो अपनी महत्ता से दूरू होते ेहो और इसी प्रकार र्स्तुतः मन रूपी लहर की उछलकूद मुझ आत्म-सागर में ही होती है। यहद मन का र्र्कल्प है तो उसे ेरोकने का सिान करो और जब 'म'ैं ही है तो सिान कहा,ूँ बड़ी र्र्धचि बात है। इसकी सरलता ही कहठनाई है। िन सग्रांह करना फकतना कहठन है, दुकान करो, नि उठाओ, नुकसान उठाओ तब िन सग्रांह होता है, परन्द्तु लोग इसे ेकहठन नही ं मानते। आत्मपद यहद कहठन होता तो सिान गम्य हो जाता। आत्मपद तो स्र्तः मसद्है, तुम्हें कुछ करना-रिना नही ंहै, तो इसे ेकहतेहैंकहठन। इसकी सरलता ही कहठनाई है। यहद कहठन होता तो कहठन नहींमानते। तस्मात् ्सर्ेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च' इसी को परम् ्समाधि कहते ेहैं।

भगर्ान कहते ेहैं -

एतन्मतं ंसमाततष्ठ परमेणे समाधधना ।
भवान् ्कल्पत्तवकल्पेषु न त्तवमुह्यतत कहहधिचत् ्॥

(भगर्ान् ्2/9/36)

पूव िसमाधेरणखलंत्तवधचन्तयेदोंकारमारं सचराचरं जगत् ्।
तदेव वाच्यंप्रणवो हह वाचको त्तवभाव्यतेज्ञान वशान्न बोधतः ॥

(अ.रा. रामगीता 48)

अपनेस्र्रूप करके इसमें स्स्थत हो जाओ। परम समाधि के मलए सिान नहीां है। तनर्र्कशल्प समाधि तक

सिान है। महात्मा लोग लखा देते ेहैं। उपतनषद कहती है -

दुलुभिो त्तवषयत्यागो दुलुभंतित्त्व दशनिम् ्।
दुलुभिा सहजावस्त्था सद्गुरोः करुणां ंबबना ।।

(तेजत्रबन्दु ुउप. 2/8)

तो ये चीज बनी-बनाई स्र्तः मसद्द है। 'तस्मात् ्सर्ेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च-इस स्स्थतत में स्स्थत होकर सब काय शसहज भार् सेकरें तो फिर क्या अभ्यास में बैठने ेमें कहठनाई होगी, क्या र्ि्क्षेप उठेगा।' भगर्ान कहते ेहैं फक- स्मरण भी कर और युद्द भी कर। इसी तरह मन में र्ि्क्षेप भी उठनेदे और स्मरण भी कर, अगर युद्द भी करना और स्मरण भी करना है तो फिर अब क्या चू-चपड़ है, कोई मीन-मेख नहीांरहा। र्ि्क्षेप अपना काम करे और तू अपना काम करा खूब समझ लो, अब यहा ूँयहद कसर रह गई तो फिर तनकलनेर्ाली नहीांहै। स्जतनी कसर है तनकाल दो, कुछ न रहे। अरे यार! यह तो यारों के िैल हैं, तुमको यार के िैलों से क्या मतलब, यार के याराने से मतलब है। बड़ा आदमी कभी सामने सड़क से तनकलता है तो पास-पड़ोस के दुकानदार देखते हैंफक कौन जा रहा है, श्रीमान् ्होंगे। उत्कण्ठा करते ेहैं, परन्दतुर्ह बड़ा आदमी सीतनगाह फकये आगे ेबढ़ जाता है, उसका यही बड़प्पन है। यहद र्ह दोनों तरि चकमक-चकमक देखे तो क्या र्ह बड़ा आदमी है। र्ह क्यों देखेगा, तो तुम इतनेबड़ेमहान होकर कल्पना को क्यों देखते ेहो, र्ीर को क्यों देखते हो, मन बुद्धि को क्यों देखते हो, इसमलए जैसे ेस्र्भार् में हो, र्ैसेही बैठे रहो। और कल्पना उठती है तो ध्यान ही क्यों देते ेहो। इन कल्पनाओांका क्या, इनको उठना है उठने दो, इिर-उिर देखते हैं तो देखनेदो। स्जसको देखना हो देखो। जो 'म ै' को देखेगा, र्ह म ै ही हो जायेगा। र्ि्क्षेप का नाम ही न रहेगा। इस स्स्थतत में रात भर बैठे रहो, मजाल है कोई र्ि्क्षेप उठे। ये लतिी हैं छिो- छिो। एक पकड़ गया तो बेड़ा पार है। अभी तक र्ि्क्षेप रोकने का अभ्यास करते ेथे, अब र्ि्क्षेप न रोकने का अभ्यास करो। अभी तक जो अभ्यास फकया है र्ि्क्षेप मानकर अभ्यास फकया है और यही अभ्यास तुम्हें दुुःख दे रहा है तो अब उलि दो, र्ि्क्षेप है ही नहीांइसका अभ्यास करो। भैया, यह जो बताया जा रहा है यही प्रेम का स्र्रूप है। र्ि्धि-तनषेि तनम्न कोहि की बात है। यहाूँर्ि्धि-तनषेि नहीां, जीर् नहीां, ब्रह्म नहीां, यहाूँतो सब भार्ों का अभार् है। हमारी तरि देखना, जैसे ेबैठे हो, बैठे रहो, र्ि्क्षेप उठतेहैं तो उपेक्षा करो। जब तुम उनकी तरि देखोगे े तो र्े अकड़ जायगें। अब तुम न देखने ेकी कोमर् करो और यहद हदखता है तब भी उसको देखने ेकी जरूरत नही ां है। जब देखता हूूँ तब हदखता है और यहद हदखता है तो 'म ै' ही हदखता हूूँ। जब र्ि्क्षेप को देखता हूूँ तब र्ि्क्षेपे हदखता है और न देखूूँतो न हदखे। फकसी प्रकार समझ लो। अपनेमन, बुद्धि को मुझमें लगा दो। जो भी नाम रूप सामनेआये 'म ै' का डण्डा लगा दो, 'म ै' हूूँ। जहा ूँतुमने 'म ै' हूूँ कहा तो मन भगर्ान में अर्पतश हो गया। यही मन को, बुद्धि को भगर्ान में अर्पतश करना है। मन, बुद्धि की तरि फकांधचत् ्मिा भी न देखना, यही भगर्ान का धचतांन है। जब मन बुराई, भलाई की तरि नहीांदेखता, सारे प्रपचां की तरि नहीांदेखता, 'म ै' को छोड़कर दूसूरी चीज की तरि नही ांदेखता, तब मन ही भगर्ान है। यह सूि पकड़ लेना, चाहे और सब भूल जाना। एक र्ि्धचि बात और आ गयी, इसे ेभी बता दें। तुमसे कोई पूछे फक भगर्ान कहाूँहै तो तुम डकें की चोि पर कह देना फक जहा ूँ'म ै' हूूँ और जब पूछे भगर्ान कौन है ' तो कहना जो 'म ैहूूँ। और जब पूछे 'म ै' कौन हूूँ तो कहना जो भगर्ान है। और ना 'म ै' कहा ूँहूूँ, जहा ूँभगर्ान है। भगर्ान का क्या लक्षण है-जो अपने आप 'म ै' आत्मा के मसर्ाय दूसूरे को नहीांदेखता र्ही भगर्ान है। फकतनी सुदांर * व्याख्या है? जो में को ही देखता है, म ैको ही सुनता है, म ैको ही जानता है, र्ही सुख स्र्रूप भूमा पद है। यही नारायण पद है और यही आत्म पद है।

यर नान्यत्पश्यतत नान्यच्छृणोतत नान्यद्त्तवजानातत स भूमा ।

यर अन्यत्पश्यतत अन्यच्छृणोतत अन्यद्त्तवजानातत तदल्पं।

यो वै भूमा तत् ्सुखंयदल्पंतद्दु:खम् ्॥

(छा.उ..7 / 24 / 1)

जो दूसूरों को देखता है, जो दूसूरे को सुनता है, ई अल्प है और दु:ख रूप है और 'योर्ै भूमा तत् ्सुखम्'् यह भगर्ान के धचतांन का फकतना सुन्द्दर अभ्यास है। र्क्षेप को देखते हो, उस पर ध्यान देते ेहो तो जीर् बन जाते े हो और नहींदेखते ेहो तो भगर्ान बने बनाये हो। स्र्तः मसद् है।

संशान्त सव िसंकल्पा या मशलावदवन्द्स्स्थततः ।

जायन तनिा त्तवतनमुक्तिा सा स्त्वरूपन्द्स्स्थततः परा ॥

सारे व्यर्हार स्र्रूप स्स्थतत में ही हो रहे हैं। कल्पनाए,ूँ भार्नाए,ूँ अचछे- बुरे र्ंचार भी उठ रहे हैं, यही तो र्क्षेप है और ये र्क्षेप तुम स्र्रूप स्स्थतत में देख रहे हो। फिर डण्डा लेकेर र्क्षेप को मारनेके मलए क्यों दौड़ रहे हो। र्क्षेप को मारने बैठै हो फक भगर्ान का ध्यान करने। हांर्ाह बैठा है तख्त पर, मचछर-खिमल आते ेहैं, आने दो। र्े क्या कर लेंगे?े र्े कर ही क्या सकते हैं। सब कुछ बता हदया, अब भूलना नहींऔर यहद कदाधचत् ्भूलोगे भी तो भूलने र्ाले को भी हीींभूल जाओगे।

तस्त्मात्सवेषु कालेषु मामनुस्त्मर युध्य च ।

मय्यत्तपतिमनो बुद्धधमामेर्ैष्यस्त्य संशयम् ्।।

(गीता 8/3)

पि ररकॉडडंगं द्र्ारा श्रुत प्रर्चन का सक्षांक्षप्त रूप (रायपुर 1963)

4.इदां र्रीरां कौन्द्तेय

इदंशरीरं कौन्तेय िेरममत्यमभधीयते ।

एतद्यो वेत्तत्त तं ंप्राहुः िेरज्ञ इतत तद्त्तवदः ॥

िेरज्ञ चात्तप मां ंत्तवद्धध सविेरेषु ुभारत ।

िेरिेरज्ञयोतनं ंयतज्ज्ञानं मतंमम् ्।।

(गीता 13/1/2)

रीर है क्षिे और इस रीर को जो जानता है, उसको क्षिेज्ञ कहते ेहैं। रीर का चैतन्द्य तत्र् है आत्मा और ह क्षिेज्ञ आत्मा 'म'ैं हूूँ। आत्मा के अततररक्त स्जतने भी रीर हैं, रे् सब सघांात हैं। स्जतने भी स्थूल, सूक्ष्म और कारण रीर हैं, रे् सब सघांात कहे जाते ेहैं। इस पर थोड़ा प्रकार् डालेंगे। यह प्रफिया है।

सबसे पहले ेयह समझ लो फक जो कुछ भी ससांार में भास रहा है भूत, भौततक प्रपचां हदख रहा है, यह सभी पचां भौततक हैं। पृथ्र्ी, जल, अस्नन, र्ायु और आकार् इनको पचां महाभूत कहते ेहैं। सारा ससांार इन पचां महाभूतों का खेल है। यह रीर जो हदख रहा है यह स्थूल रीर है। इसका एक- एक तत्र् पचां तत्र्ों से बना हुआ है। पृथ्र्ी, जल, अस्नन, र्ायु और आकार्, इन सबका आपस में पचीकरण होता है और एक-एक तत्र् से पाचूँ-पाचूँ तन्द्माि एूँ उनके र्ेषय आहद होते ेहैं। इसमलए पाचूँ पजों ेपचचीस हुए। इन पचचीस तत्र्ों से, इनके पचीकरण से, यह स्थूलू रीर बना है। इसमलए यह रीर न 'म'ैं हूूँ और न यह रीर मेरा है। यह पचां भूतों का र्ेकार है। रीर दृश्य है, म ैं दृष्िा हूूँ। रीर जड़ है, म ैंचेतन हूूँ। रीर ज्ञेय है, म ैंज्ञाता हूूँ। रीर असत्य है, म ैंसत्य हूूँ। रीर प्रपचां है, ममथ्या है, दुुःख रूप है, नश्र्र है, क्षण भगुांर है, स्र्प्न है और 'म'ैं आत्मा चेतन हूूँ। यह रीर न म ैंहूूँ और न यह मेरा है। जब यह रीर 'म'ैं नहीांऔर मेरा नहीांतब केर्ल रीर से सबांधि रहने के कारण ही म ैंकहता हूूँ फक यह रीर मेरा है। मेरा कहने से ही यह सम्बोधित होता है फक यह म ैंनहीांहूूँ। मेरा मकान कहनेसे ही यह मालूम होता है फक मकान मेरा है, म ैंमकान नहीांहूूँ। कहते हो न, मेरी नाक, मेरी आखूँ, मेरा पारूँ, मेरा रीरा स्र्ाभार्र्क सभी लोगों के मुहूँ से ऐसा तनकलता है। और र्ेचार करके देखो तो यह मेरा भी नहीांहै। रीर पचां न तनकला है, पचां भूतों से बना हुआ है। मकान जैसे ेईंटगारों से बनता है। ही मासूँ-मज्जा से यह रीर बनता है। हड्डी आहद यह सब इस मकहर ही मा ूँ है। जैसे ेमकान में णखड़फकयाूँ होती है, दरर्ाजेहोते ेहैं र्ैसे ही च रीर के नौ दरर्ाजेहैं। जैसै ेघरों में घासर्ूस उग आते ेहैं र्ैसेही देह र्ाल हैं। कोई मकान लाल ममट्टी, कोई सिेद, कोई काला, पीला रांग ह होता है, रांगा जाता है। ऐसेही कोई काला, कोई गोरा, कोई सार्ांला रहने की गरज से मेरा मकान कहता हूूँ। यह मकान पचां भूतों का है। इस अन्दर 'म'ैं हूूँ जरूर, पर यह 'म'ैं नहीांहूूँ। यह हुआ स्थूल रीरा परमात्मा और अपने आप में भेद का जो भ्रम है, यह सब देहाध्यास के कारण है। ज तक साढ़े तीन हाथ की खुदी है, तब तक खुदा दूरू है और जब यह देहाध्यास- गया, तब फिर खुदा ही खुदा है। खूब समझ लो, यह रीर उत्पत्त्त-र्ेना र्ाला है, घिने-बढ़ने र्ाला है। इसको सघांात कहते ेहैं, नार्र्ान कहतेहै

देहात्म बुद्धधजं ांपापं न तद् गोवध कोहटमभः ।
आत्मा्ऽहं बुद्धधजं ांपुण्यंन भूतं न भत्तवष्यतत ॥

यहद र्ास्त्र पर र्ेश्र्ास है तो अपनेआपको जो देह मानता है उसे ेएक करोड़ गौ हत्या का पाप लगता है और जो अपने-आपको आत्मा 'म'ैं हूूँ ऐसेजानता है, इससेअधिक पुण्य भी नहीांहोता है। इसमलए जान लो फक यह स्थूल रीर न 'म'ैं हूूँ और न यह मेरा है।

अब एक रीर इसके अदांर है, उसको सूक्ष्म रीर कहते ेहैं। ह भी पचां तत्र्ों से बना हुआ है, परन्द्तु उनका पचीकरण नहीांहुआ है, यह अपचीकृत है। 19 तत्र्ों का बना है। पचां ज्ञानेस्न्द्रय, पचां कमेस्न्द्रय, पचां प्राण

मुक्तोद्वार 49 और चतुष्यि अन्द्तःकरण, मन, बुद्धि, धचत्त, अहांकार इसी के सूक्ष्म रीर, मलगां रीर, यम-यातना रीर, अष्किापुरी, अन्द्तःर्ाहक पयायश नाम हैं। इस स्थूल रीर का जन्द्म कब हुआ, सभांर्तः कब तक यह रहेगा यह तो जाना जाता है, परन्द्तु सूक्ष्म रीर तो अनाहदकाल का है, इसकी जन्द्म कुण्डली नहीांहै। जब से अज्ञान पैदैा हुआ तब से सूक्ष्म रीर पैदा हुआ। सूक्ष्म रीर अनाहद है, परन्द्तुअनन्द्त नहीांहै, सातां है। कब पैदा हुआ? स्जस हदन अज्ञान पैदा हुआ। जब तक अज्ञान का नार् न होगा बराबर तारतम्य लगा रहेगा। स्जस हदन अज्ञान का नार् होगा, उसी हदन सूक्ष्म रीर का भी नार् होगा, आना- जाना बदां होगा? इसी को मोक्ष कहते ेहैं। सूक्ष्म रीर ही आता-जाता है,एक रीर से दूसूरे रीर में प्रर्ेर् करता है और पुण्य-पाप भोगने के मलए, अपनेप्रारधि का िल भोगने के मलए , सूक्ष्म रीर ही स्थूल रीर का ढाचूँा िारण करता है। मुझ आत्मा से इसका कोई सबांधि, लेना-देना नहीांहै- ऐसा समझो।

पचां कमेस्न्द्रय, पचां ज्ञानेस्न्द्रय जो स्थूलू रीर में देख रहे हो-आखूँ, कान, नाक ये सब इस्न्द्रय नहीांहै। यह इन इस्न्द्रयों के अनुभर् का सिान है। इनके र्ेषयों को ग्रहण करने का सिान हैं। आखूँ देखनेका सिान है। कान सुनने का सिान है। नाक सूघांने का सिान है। इस्न्द्रया ूँभीतर हैं और सूक्ष्म हैं। नाक, कान, आखूँ के अदांर हैं, र्ह हदखती नहीांहैं। फिर पचां प्राण है, प्राण का स्थान है हृदय। इसकी क्या फिया है? 21600 श्र्ासां को बाहर- भीतर प्रततहदन ले जाना होता है। मनुष्य के श्र्ासां का प्रमाण है फक 15 श्र्ासां 1 ममनि में र्ह लेता है, घड़ी लगाकर देख लो। प्राण र्ायु का काम है 900 श्र्ासां प्रतत घिांा और 21600 श्र्ासां 24 घिांं में भीतर-बाहर करना। 73 लाख 77 हजार श्र्ास े1 साल में होती हैंऔर यहद मनुष्य 100 साल तक जीर्ेत रहे तो 93 करोड़ 31 लाख 20 हजार श्र्ास े लेगा। रीर में साढ़े तीन करोड़ छेद हैं। हमारे ऋर्षयों ने कुछ बाकी नहीांरखा है, सब बताये हैं। यह तो चलनी से भी बढ़कर है। भूख-प्यास प्राण को लगती है। श्र्ासां-प्रश्र्ासां तनकलता जाता है और हृदय उसका स्थान है। 'उदान' कण्ठ में रहता है, डकार पैदैा करता है। 'हहता' नाम की नाड़ी बाल से भी महीन होती है, कण्ठ में है, उसमें स्र्प्न पैदा होता है। 'समान' र्ायु नामभ में रहता है। यह सब रसों को श्र्ासां रूपी िोंकनी से र्ुद् कर 72 नामलयों से रीर रूपी बगीचे को बतौर माली सीचांता है। बागर्ान का काम करता है। 'व्यान' र्ायु सधांयों को मोड़ता है। 'अपान' र्ायु स्र्ीपर का काम करता है। रीर की गदांगी को हिाता है, नहीांतो गदांगी िैल जायेगी। मल-मूि को तनकालता है, परन्द्तु 'म' ैं आत्मा देखता रहता हूूँ। इन प्राणों से मेरा कोई मतलब नहीांहै। 'म' ैं ब्रह्म आत्मा अकत्ता शहूूँ। 'म' ैं रष्ट्िा हूूँ, ज्ञाता हूूँ, साक्षी हूूँ। अब पचां र्ायु और होते ेहैं। सुनो- 'नाग' डकार पैदैा करती है। 'कूम'श आखूँ को मूदांती और खोलती है। 'कृफकल' छीकां पैदैा करती है। 'देर्दत्त' जभांाई पैदैा करती है और 'िनजांय' मुदा शर्रीर में भी रहता है। इसी से ज्यादा हदन में मुदाश िूल जाता है। यहद र्ायु न रहे तो िूलेगा कैसे?े जब जलाया जाता है, तब अपनेकारण में लीन हो जाता है, परन्द्तु म ैंआत्मा इसका साक्षी हूूँ, दृष्ट्िा हूूँ, ज्ञाता हूूँ, अकत्ताशहूूँ।

इस रीर के अदांर पचां कोष हैं- अन्द्नमय, मनोमय, प्राणमय, र्ेज्ञानमय और आनन्द्दमया कोष का अथ श होता है म्यान और खजाना। रीर रूपी म्यान (कोष) में आत्मा रुपी तलर्ार है अथर्ा आत्मा रूपी िन रीर रूपी खजाने (कोष) में है, यह हुआ स्थूल रीर और सूक्ष्म रीर ।

पाचूँ ज्ञानेस्न्द्रया ूँमन रूपी राजा की पिरानी हैं और पचां कमेस्न्द्रया ूँइन ज्ञानेस्न्द्रयों की बादाी हैं। इनके पाचूँ र्ष्य र्धद, स्पर्,श रूप, रस, गिां, एक-दूसूरे के मलए सेर्ा करती हैं।

अमल पतंग मृगृ मीन गज जरें एक ही आचूँ ।
तुलसी वे कैसे ेन्द्जये न्द्जनको लागे ेपाचूँ ।।

ी), मीन (मछली),(भौरा)(हाथी) ये सब एक-एक र्ष्य में मारे जाते ेहैं। भौरा गिां र्ष्य में मारा जाता है। भौरा कमल के ि ूलों में इतना उन्द्मत्त हो जाता है फक र्ह कमल के भीतर पराग के गिां में मस्त रहता है। र्ाम होते ेही उसको तनकल जाना चाहहए, परन्द्तु र्हीांपड़ा रहता है। र्ाम हो जाती है और कमल का ि ूल सपुांहित हो जाता है। भौरा र्हीांि ूँस जाता है, तब र्ह सोचता है फक-अब तो ि ूँस गया। जब सुबह होगी तब सूय शभगर्ान उदय होंगे,े कमल के ि ूल णखलेंगेऔर भाग जाऊँगा। रात्रि तो व्यतीत हो गयी, परन्द्तु अरुणोदय के पहले ेही एक प्यासा हाथी जगांल से तनकला और िमाके से तालाब में कूद पड़ा। उसने पिे भर पानी र्पया और कमल, कमल के पत्ते, नाल सब सूडूँ से लपिे कर भोजन कर गया। इस प्रकार गिां र्ष्य में भौरा मारा गया। रूप र्ष्य में पतगों ेनाच-कूद कर नष्िहो जाते ेहैं। मृगृ र्धद र्ष्य में मारा जाता है। मर्कारी जगांल में मृगृ ि ूँसाने जाता है, तब बासूँरी बजाता है और 'मृगृ-नाद' को सुनकर मृगृ एक धचत्त हो जाता है और मर्कारी के चगुांल में ि ूँस जाता है। हाथी स्पर् शर्ष्य में मारा जाता है। महात्मा तुलसीदास जी कहते ेहैं फक स्जनके पास ये पाचूँों र्ष्य भोग के सािन हैं, उनका क्या हाल होगा?

आखूँ के देर्ता है सूय,श इसका क्या प्रमाण है? बिीली जगह में इसका पता लगता है, जहा ूँसब अ ांग तो गल जायगें,े परन्द्तु आखूँ को ठण्डक न लगेगी। क्यों न ऐसा हो, भगर्ान सूय शका जो तनर्ास स्थान है। स्जह्वा (रसना) इसमें र्रुण देर् का तनर्ास है। यह कभी नहीांसूखती। मुहूँ यह अस्ग्न देर्ता का स्थान है। पानी मुहूँ में लेकर थोड़ी देर में बाहर करो तो कुनकुना हो जार्ेगा। कान का हदर्ा, नाक का अस्श्र्नी कुमार, हाथ का इन्द्र, पैर का उपेन्द्र देर्ता है। पैर क्यों पड़ते ेहैं, मसर क्यों नहीांपड़ते?े मसर तो पैर से पर्र्िहोता ही है, फिर क्यों चरण छूते हैं। लोग कहते ेहैं-चरण हुई महाराज, पारूँ पड़ी महाराज। यह इसमलए फक पैर में भगर्ान 'उपेन्द्र' का तनर्ास है, 'उपेन्द्र' र्ामन भगर्ान का नाम है। र्ष्णु ुस्र्रूप है। इसमलए चरण पूजन का अथ शभगर्ान र्ष्णु ुका पूजन करना है। मन का चन्द्रमा, हृदय का नारायण, अन्द्तःकरण का र्ष्णु,ु मर्श्न का प्रजापतत, गुदा का यम, बुद्धि का बह्मा, अहांकार का रुर, देर्ता हैं।

इन्द्न्द्रयि सुरन्ह न ग्यान सोहाई। त्तवषय भोग पर प्रीतत सदाई ।।

(रामायण उत्तर.)

देर्ता बड़े र्षयी होते ेहैं, र्ष्य की रुधच इनमें सदैर् रहती है। ये बड़ेचालाक होते ेहैं। र्ृद्िार्स्था में जब र्रीर तनबलश हो जाता है, तब एक-एक करके सभी स्थान छोड़ जाते ेहैं। फिर कान से सुनाई नहीांपड़ता। आखूँों से

हदखाई नहींपड़ता। देर्ता क्या करेंगे ेरहकर, इस्न्द्रया ूँतो मर्धथल हो रही हैं। इन्द्हींसे र्ष्य भोग हो सकता है, फिर रहकर क्या करेंगे?े बस, सब चले ेजाते ेहैं, स्र्ाथी जो हैं।

र्ां है- 'र्ीर की मृत्यु हो जाने पर आत्मा तनकलती है या प्राण तनकलता है?' क्या कहा जाय? यह भी समझो, व्यापक चीज का आना- जाना नहींहोता। आत्मा का आर्ागमन नहींहै। फिर, ऐसा कौन-सा तत्र् है, स्जसके तनकल जानेसे'राम-नाम सत्य है' कहनेलगते हैं। सुनो-इस र्ीर से सूक्ष्म र्ीर तनकलता है। सूक्ष्म र्ीर ही एक र्ीर सेतनकलकर दूसूरे र्ीर में प्रर्ेर् करता है। अब प्रश्न होता है फक सूक्ष्म र्ीर के साथ आत्मा जाता है फक नही।ां हाूँजाता है, परन्द्तु ऐसा नहींजैसे ेघोड़े पर बैठकर सर्ार जाये। तब फिर फकस प्रकार जाता है। समझो (स्र्ामी जी अपने हाथ में बिंी घड़ी की तरि सकेंत करते ेहैं) इसको कहते ेहैंघड़ी, उदाहरण देकर समझा रहे हैं। इसका बाल कमानी, किांं, घिंं के किांं, ममनि के किांं, सेकण्ड के किांं और सारे पुजे ेलोहे के बने हैं, लोहा इसके अन्द्दर व्यापक है। अब इस घड़ी का प्राण र्ायु क्या है? बाल कमानी। र्ह भी लोहे की बनी है। यहद, इस घड़ी की बाल कमानी तनकाल कर दूसूरी घड़ी में लगा दी जाय तो इस घड़ी का हिक-हिक व्यापार बदां हो जायेगा और दूसूरी घड़ी स्जदां हो जायेगी। तब लोहा तनकला फक बाल कमानी? बाल कमानी तनकली और बाल-कमानी के साथ लोहा गया फक नहीं? हो गया, परन्द्तु कारण रूप से गया। इसी तरह र्ीर घड़ी है, सूक्ष्म र्ीर बाल कमानी पचां प्राणर्ायु, पचां ज्ञानेस्न्द्रयाूँ, पचां कमेस्न्द्रया,ूँ चतुष्यि अन्द्तःकरण, पचां कोर्, सत् ्रज तम, जागत स्र्प्न सुषुस्प्त ये सब प्रपचां है और ये सब आत्मा रुपी लोहे से बने हुए हैं। आत्मा ठसाठस भरा है। सूक्ष्म र्ीर के साथ आत्मा र्या फक नहीं? हाूँगया, परन्द्तु अमभन्द्न होकर गया। कारण रूप से गाया इस तरह आत्मा का आना-जाना मानना चाहहए। अलग होकर नहींजाया। आरमा आप्त (चयाप्तौ) ितु से बनता है। आत्मा लबालब है। ततल भर भी जगह खाली नही ांहै, व्यापक है। आत्मा कही ांसेन आता है और न कही जाता है।

जब सो जाते ेहो तब सूक्ष्म र्ीर से स्र्प्नार्स्था में स्र्प्न देखते हो। गाढ़ी नीदां में सूक्ष्म र्ीर भी नही ां रहता, कारण र्ीर ही रहता है। उस अर्स्था को अज्ञान-अर्स्था कहते ेहैं और कारण र्ीर की सज्ञां देते ेहैं। कारण से सूक्ष्म और सूक्ष्म से स्थूल र्ीर होता है। जब गाढ़ी नीदां से उठे तो कहते ेहो 'आज मुझे खूब अचछी नीदां आयी, तत्रबयत मस्त हो गयी, बड़ा आनन्द्द आया। कुछ पता ही नहींरहा।' इस गाढ़ी नीदां का पता तुम सबेरे उठकर देते ेहो। तब भैया 'नही ांपता' का पता फकसको रहता है, यही अज्ञान है। आत्मा इन तीनों र्ीर से परे है। सस्चचदानन्द्द व्यापक तत्र् 'म'ैं हूूँ। न 'म'ैं स्थूल र्ीर, न 'म'ैं सूक्ष्म र्ीर और न 'म'ैं कारण र्ीर हूूँ। 'म'ैं इनका अनुभर् करता हूूँ, इनका आिार हूूँ. इनका ज्ञाता हूूँ। 'म'ैं आत्मा का नार् नही ांहोता है, परन्द्तु अज्ञानर्र्ात् ्र्ह अपनेआपको मान लेता है ससांारी जीर्, साढ़े तीन हाथ का र्ीर और अनाहदकाल से भिकने का यही कारण 1 है। बस, जहा ूँअपनेआपको जीर् माना, मन पैदा हो गया, प्रपचां पैदा हो 1 गया। फिर तो असाध्य रोग हो जाता है। इतनी महान भूल !! स्र्यां सस्चचदानन्द्द होते ेहुए भी अपने को क्या मान 1 मलया है। इस र्ष्य में कण शका आख्यान बताते ेहैं -

महाभारत में कुरुक्षेत्र में जब भी अजुनश कण शके सामनेआता तो बाणों । की र्षा शके साथ-साथ जोर से

पुकार कर कहता- 'अरे दासी पुि स्रूर! तू क्या लड़ेगा?' इससेकण शके मन में ग्लातन पैदैा हो जाती और र्ह अपने को हेय समझता। यद्यर्प कण शसूय शभगर्ान का पुि था, परन्द्तु बचपन से दासी ने पाला था। दुयिोेन के यहा ूँपला था इसमलए अपनेको दासी पुि ही मानता था। उसको अपने क्षत्रिय र्ीर का ज्ञान न था। अपनेपैदाइर् की कथा उसे ेज्ञात नहीथंी। जब भी अजुनश की ललकार सुनता फक 'अरे दासी पुि।' तब उसका हृदय कमजोर हो जाता था। एक हदन इसी र्र्षय के उिेड़बुन में हृदय व्यधथत हो गया, उसका धचत्त र्र्त हो गया। र्ह रो रहा था। इसी समय भगर्ान नारद र्हांूँपहुूँचे ेऔर कण शको सम्बोेन करके पूछा फक 'बेिा तू क्यों रो रहा है?' कण शने बताया फक 'महाभारत में अजुनश मुझे दासी पुि कहता है। म ैंक्या करूँ। दासी ने मुझे पाला है। मुझे अपनी उत्पर्त्त का पता नहीं, मेरे माता-र्पता कौन हैं?' नारद जी को दया आ गयी। र्े बोले 'बेिा तू गलत ेारणा छोड़ दे, तेरी माता र्ही है जो अजुनश की माता है। तू भी कौन्द्तेय है, सुन तेरी उत्पर्त्त की कथा ऐसेहै-एक समय महर्षश दुर्ाशसा मभक्षा लेनेआये थे। उस समय तेरी माता कुन्द्ती सुन्द्दरी कुमारी थी। र्ह दुर्ाशसा ऋर्ष को मभक्षा देनेआयी। जब कुन्द्ती मभक्षा दे रही थी तब दुर्ाशसा ऋर्ष को मन में बड़ा सतांप हुआ। र्े बोले फक बेिी तेरे सुन्द्दर स्र्रूप को देखकर दुःख होता है। भर्र्ष्य में जो तुझे ेपतत ममलेगे, र्ह पाण्डु रोगी होगा। म ैंतुम्हें एक आकषणश मिं देता हूूँ। जब तुझे सतांन की इचछा हो, इस मिं से तू स्जस देर्ता का आकषणश करेगी र्े देर्ता तेरे पास आयगें। यह मिं तू अपनेपतत की आज्ञा लेकर उपयोग में लाना।' दुर्ाशसा ऋर्ष आर्ीर्ाशदश देकर चले ेगये। एक हदन तुम्हारी माता ने जब र्ह क्र्ाूँरी ही थी, इस आकषणश मिं का उपयोग सूय शभगर्ान के प्रतत कर हदया। र्ह मिं का प्रभार् देखना चाहती थी। जब आकषणश कर हदया तो सूय शभगर्ान प्रकि हो गये और बोले फक देर्ी तेरी इचछा पूण शहो। कुन्द्ती घबरा गई और रोनेलगी। सूय शभगर्ान ने कहा फक मेरा आना तो व्यथ शन होगा। उसने(कुन्द्ती ने) सूय शके र्ीय शको दोने ेमें लेकर नदी में प्रर्ाहहत कर हदया। उसे ेमछली तनकल गयी। केर्ि ने जब उस मछली को पकड़ा उस समय उसके कान से तुम तनकले। और दासी ने दुयिोेन के यहाूँतुम्हें पाला। र्स्तुतः, तू दासी पुि नहींहै। नारद के कहने पर कण शने माता कुन्द्ती के पास जाकर पूछा। कुन्द्ती ने भी यही बात बतायी, तब भ्रम तनकल गया। फिर जब कुरुक्षेत्र में अजुनश ने ललकारा फक 'अरे दासी पुि!' 'मूख शतू क्या जानता है। म ैंसूय शभगर्ान का पुि हूूँ। जब जोर से कण शने ललकारा तब अजुनश को मालूम पड़ा फक कोई है। कहने का मतलब यह है फक आप स्र्य ंां साक्षात् ् चैतन्द्य ब्रह्म होकर अपनेआपको क्या का क्या मान बैठे हैं, म ैंससांारी जीर् हूूँ। िेेकू-खचेड बना फिरता है। समझो एक दृष्िातं है इस पर -

" एक गड़ररया था। जगांल में भेड़ चराया करता था। फकसी हदन हाल ही में पैदा हुआ मसहां का बचचा उसे े जगांल में ममल गया। गड़ररया मसहां के बचचे को भेड़ा का दूे र्पलाता और भेड़ों के साथ ही रखता था। उसका नाम भी भेड जजैसा रख हदया। कुछ हदन बीतने पर मसहां र्ार्क भेड़ों में इतना ममल गया । फक र्ह मानने लगा फक म ैं भी भेड़ हूूँ। उनके ही समान चलना, आर्ाज लगाना। आहद व्यर्हार करने लगा। एक समय जब यह मसहां बालक भेड़ों के साथ चर रह था तो उिर से जगांली मसहां तनकला। उस मसहांर्ार्क को देखकर जगांली मसहां आश्चय शकरने लगा फक यह मसहां होते ेहुए भी भेड़ों के साथ कैसे ेरह रहा है? उसनेजोर से दहाड़ा। दहाड़ सुनकर सभी भेड़ भागे। र्ह पालतू मसहां भी भेड़ों के साथ भागा। तब जगांली मसहां ने पुकारा 'ओ मेरे जातत र्ाले, जरा खड़ा रह, तेरे से मुझे कुछ

बात करनी है।' उस पालतू मसहां ने खड़ा होकर पूछा फक क्या बात है। जगांली मसहां ने कहा 'यार, तू मसहां होकर भेड़ों के साथ रहता है, र्म शहै।'

पालतू मसहां- 'म ैंमसहां नहींहूँ, भेड़े हूँ भेड़।'

जगांली मसहां- 'तू भेड़ नहीं, देख तेरी आखेँ बड़ी-बड़ी, भेड़ों की आखेँ छोिी-छोिी हैं। भेड़ों की कमर मोिी तेरी कमल पतली है। तेरे दातूँ बड़े-बड़ेऔर यार तेरे र्रीर का एक भी अांग भेड़ जैसा नहींहै। तू भेड़े नहींहै, मसहां है ।"

पालतू मसहां- 'क्या कहते ेहो, म ैंबड़ा भेड़ हूँ और ये छोिे भेड़ हैं। कुछ भी कहो म ैंभेड़ ही हूँ और नहींतो प्रमाण दो।'

इस पर जगांली मसहां उसे ेनदी में ले गया और दोनों की परछाइयाँममलान कराने लगा। बोला- 'देख परछाई ममला तो सही, ममलती तो है न। मेरे कान और तेरे कान एक से हैं। तेरी पूँछ और मेरी पूँछ एक सी है। मेरे यार तू तो मसहां आ

पालतू मसहां- 'प्रमाण तो यही ममल रहा है। ऐसा तो मालूम होता है फक म ैंभी मसहां हूँ, पर एक कसर है। तुम्हारी पूँछ ऊपर की ओर उठी है और मेरी पूँछ नीचे की ओर है।'

इस पर जगांली मसहां ने अपने सामनेके दोनों पैर जमीन पर खूब गड़ाकर कहा- 'तू भी ऐसा कर और फिर र्रीर को अपनी तरि खीचां और कमर को उचका कर ऊपर तो कर।"

जब पालतू मसहां ने रै्सा ही फकया तो जो कमर झुकी हुई थी, र् सीिी हो गयी और जो पूँछ दबी थी, र् ऊपर को उठ गयी। तब जगांली मसहां ने पूछा- 'अब तो कोई कसर नहींहै?'

'नहींभैय्या, सब भ्रम तनकल गया। सर्ांय-र्पययश तनकल गये। म ैंजान गया फक म ैंमसहां हूँ, भेड़ नही।ां'

'तब फिर दहाड़ जोर से।'

परन्तु, पालतू मसहां दहाड़ देने के बजाय ममममयाया- 'म ै- म'ै क्या करे भाई, बोली ही भूल गए हैं। तुम बोलो तो साथ में म ैंभी बोलू।ां

जब मसहां दहाड़ने लगा तब पालतू मसहां भी दहाड़नेलगा।

इस दृष्टाांत का तात्पय शयह है फक मनुष्य भेदर्ादी गड़ररये, साम्प्रदातयक-गुरु, आचायों के चक्कर में पड़कर अपनेर्ुद्ध स्र्रूप, सत्- धचत्-आनन्द स्र्रूप को भूलकर मानता है फक म ैंससांारी जीर् हूँ। यह मनैंमान मलया है फक म ैंजन्मता हूँ, मरता हूँ, आता हूँ, जाता हूँ, स्त्री-पुरुष हूँ, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, र्ानप्रस्थी, सन्यासी हूँ-

मुक्तोद्गार 54 पुण्यी-पापी हूँ, लम्बा-चौड़ा हूँ, काला-गोरा हूँ। अज्ञान के कारण इस प्रकार मान बैठा हूँ। जगांली मसहां के समान कोई

महान पुरुष आते ेहैं और 'तत्त्ममस' तथा 'अहम् ्ब्रह्मास्स्म' इन महा-र्ाक्यों की जब दहाड़ देते ेहैं और अपने स्र्रूप को र्ेदान्द्त रूपी तालाब में हदखा देते ेहैं, तब र्े अपने स्र्रूप का ज्ञान करा देते ेहैं, लखा देते ेहैं फक तू आत्मा

है, रु्द् सिस्चचदानन्द्द है, व्यापक है, तब र्ह अपने स्र्रूप में स्स्थत हो जाता है। म ैंससांारी जीर् हूँ, ऐसा मानना र्ास्तर्कता नहींहै यह भ्रम है, अज्ञान है। इस अज्ञान को दूरू करो। अपनेआपको जानो, अपनेआपको पहहचानो।

र्ज्ञिं चात्तप मां ंत्तवद्धध सवर्ेरेषु भारत ।
र्ेरिज्ञयोतनं ंयतज्ज्ञानं मतं ंमम् ्।।

(गीता 13/2)

हे अजुनश! क्षिे जो यह र्रीर है, उसका जाननेर्ाला 'म' ैं हैं। 'म' ैं ही क्षिेज्ञ हूँ, मुझसे क्षिे मभद्म नही ंाहै। सारे चराचर में जो आत्मा है, र्ह आत्मा नेहा है। व्यापक तत्र् आत्मा है, र्ह 'ग' है। अन्द्न प्रश्न होता है। फक जब "म' ैं ही बहा हूँ तब अपने-आपको कैसे ेभूल गया। 'म' ैं नेअपने आपको ससांाि हीचया मोना? सनातन ब्रह्मपना क्यों भूल गया? सुनो, अभी यहूँपर सब बैठे हो इस पण्डाल में देखो, एक सापां, काला नाग, तुम्हारे ऊपर कही ंासे आकर गोद में आ धगरा। उस समय क्या र्ेचार करना चाहहए फक यह सापूँ कहा ूँसे आया या सापूँ को तुरन्द्त िेंक देना चाहहए? क्या सोचना चाहहए फक सापूँ का इरि आना तो हो नहींसकता, फिर आया फकिर से? ऐसेसोचने े बैठोगेतो सापां किा खायेगा। कही ंासे आया हो अपनी बला से। तुम्हारा कत्तव्शय यही है फक उसे ेजल्दी दूरू िेंक दो, तुरन्द्त सापूँ को िेंक दो। कहा ूँसे आया यह मत सोचो? र्ेचार मत करो फक अज्ञान क्यों आया, कहा ूँसे आया? अभी मत सोचो। मुक्ता के र्ाक्य पर र्ेश्र्ास करो। तब तुम्हें फिर मालूम करना कुछ न रहेगा, तुम जान लोगे फक स्जसको 'म' ैं अज्ञान (काला नाग) समझा था र्ह न था, न है और न आगे ेरहेगा। 'म' ैं पहले ेभी ज्ञान स्र्रूप था, अभी भी ज्ञान स्र्रूप हूँ और आगे ेभी ज्ञानस्र्रूप रहूँगा। मेरा अज्ञानी समझना भ्रम था। 'म' ैं रु्द् सिस्चचदानन्द्द ब्रह्म हूँ। मुक्त स्र्रूप हूँ। र्ार्ीि के कहने से अज्ञान रूपी काले ेनाग को तुरन्द्त िेंकना बुद्धिमानी है। अभी यह अज्ञान कहा ूँसे आया यह प्रश्न हल न होगा। मुक्ता की र्ाणी पर र्ेश्र्ास करके उसे ेदूरू करो। फिर देखोगे फक तुम स्र्य ंासस्चचदानन्द्द आत्मा हो, अज्ञान तीन काल में है ही नही।ां

दूसूरी युस्क्त से भी समझो। देखो, जब म ैंसस्चचदानन्द्द ब्रह्म हूँ, यही ंाखड़े ेहो जाओ। अब इसके आगे ेमत जाओ और प्रश्न करो तब यह अज्ञान कहा ूँसेआया, जबफक 'म' ैं सस्चचदानन्द्द ब्रह्म हूँ, यहींखड़े ेरहो। इस स्थान से मत हिो। अब क्या अज्ञान परक प्रश्न होगा? इस स्थान को छोड़कर तनम्न स्तर पर आते ेहो तब यह सब प्रश्न

होता है। जब 'म' ैं सस्चचदानन्द्द ब्रह्म हूँ, इस स्थान में अज्ञान परक प्रश्न होगा क्या? नही।ां अिंकार देर् में अिंकार है, न फक प्रकार् देर् में। इसी तरह अज्ञान देर् में अज्ञान है न फक नारायण देर् में। आत्म देर् से देखोगे े तो न ज्ञान है और न अज्ञान है। सूय शदेर् सेदेखो तब सूय शमें न प्रकार् है और अिंकार है, न हदन है, न रात है, सूय श ही सूय शहै। इसी तरह अपने स्र्रूप आत्मा में देखोगे तब न अज्ञान है और न ज्ञान है। सदैर् एक चेतन ही चेतन है।

ोरिज्ञं चात्तप मां ्ततवद्धध सर्विरेषु भारत ।
ोरिरिझयोतनं ्यत्तज्ज्ञानं मतं मम् ्।।

(गीता 13/2)

हे अजुनश, इस प्रकार जो क्षिे और क्षिेज्ञ को जानता है, यही ज्ञान है, बतज्ज्ञानां' इसी का नाम ज्ञान है।

ोपि ररकॉडडगं द्र्ारा श्रुत प्रर्चन का सक्षांक्षप्त रूप

5.ऊध्र्मूशलमिःर्ाखमश्र्त्थ ्ां

ऊध्वमूिलमधःशाखमश्वत्थंप्राहुरव्ययम्। ्
छन्दांमसयस्त्यपणातिनयस्त्तंवेदसवेदत्तवत्॥्

(गीता 15/1)

यहाँूपर ससांार, को अश्र्त्थ का रूकूष माना है। अश्र्त्थ-स्जसकी जड़ ऊपर को बतायी गयी है, र्ाखाए, ूँ प्रततर्ाखाए ूँनीचे की ओर िैली हुई है और ऋग्र्ेद, यजुर्ेद, सामर्ेद, अथर्र्शद, चारों जो र्ेदे हैं ये सब पत्ेते हैं। इस प्रकार के रूकूष अश्र्त्थ को जो जानता है, 'सर्ेद र्त्' ् हीं र्ेदे ्र् ्है। हीर्ेदि र्ेत्ेता है। हीं ार्ेद का जानने र्ाला है। ससांार का नाम अश्र्त्थ क्यों पड़ा? अश्र्त्थ का अथ शहोता है- अ=न, नहीं, स्र् = प्रातःकाल, स्थ = तत रहे - स्स्थत, इतत अश्र्त्था अिंकार में रहे और प्रकार् होनेपर जो न रहे, उसको कहते ेहैं 'अश्र्त्था' ससांार अज्ञान के अिंकार में तो है, परन्द्तु ज्ञान का प्रकार् होनेपर नहीांरहता। इसीमलए ससांार को अश्र्त्थ कहा है क्योंफक रज्जु में जो सप शहै र्ह अिंकार रहने तक है और अिंकार के नष्हि जाने पर, जब प्रकार् हो जाता है तब र्ह ममथ्या सप,श नहीं रहता। र्ह खो जाता है, नष्हि जाता है। इसी तरह यह ससांार अज्ञान के अिंकार तक ही जो है। अज्ञान ही ससांार है। यार्त् ्काल अज्ञान है, तात्र्काल ससांार भासता है। अज्ञान के दूरू होनेपर, र्ेनार् हो जानेपर, नष्हि जाने पर ससांार का पता नहीांरहता। स्जस प्रकार रज्जु का ज्ञान, अिंकार का नार् और सप शका अभार् (र्ेनार्) ये तीनों बातें एक ही िाइम में होती हैं, ऐसा नहीांफक अिंकार का अभी नार् हो जाय और रज्जु ुका पररज्ञान साल भर बाद हो और उसके बाद फिर सप शका र्ेनार् हो, ऐसा नहीांहै, एक ही िाइम में तीनों की तीनों चीजें होती हैं। इसी तरह

मुक्तोद्गार 56 अनन्द्तकालीन अज्ञान की दर्ा है। कभी- कभी लोग कहते ेहैं फक महाराज, ज्ञान िीरे-िीरे होगा। तो

सुनो-फकसी

पर्तश की कन्द्रा में हजारों-लाखों र्षों का अिंिेरा छाया है, अिंिकार है। हूँिका अिंिकार यह नहीींकहता फक हमारा यहाूँपर लाखों र्षों का कधजा है, हम जल्दी नहीींजायगें। जहाूँतुम प्रकार् लाये फक र्ह अिंिकार कहा ूँचला जाता है, इसका पता नहीींलगता। इसी तरह अनन्द्तकाल का अज्ञान जो हृदय में छाया है, स्जस समय आत्म स्र्रूप का बोि होता है, उस समय यह अनाहदकाल का अज्ञान कहा ूँचला जाता है, भाग जाता है, कहीींकुछ पता नहीींलगता। इसी तरह अज्ञान का नार्, स्र्रूप का बोि और ससांार का नार् तीनों एक ही िाइम में होते ेहैं।

भगर्ान ने इस ससांार रूपी र्ृक्ष का नाम रखा है 'अश्र्त्था' इसकी जड़ ऊपर को है। ऊपर का अथ शहोगा, सबसे परे। अरे भाई! रज्जु ुमें जो सप शभासता है, उस सप शकी जड़ क्या है? रज्जु। स्जसमें भासता है र्ही उसका आिार है, जड़ है। यह अश्र्त्थ ससांार भास रहा है। फकसमें भास रहा है? अपनेस्र्रूप में, अपनेआप में, ऊध्र्,श यह सबसे परे है। पचां प्राण से परे, पचां ज्ञानेस्न्द्रयों से परे, पचां कमेस्न्द्रयों से परे, मन, बुद्धि, धचत्त, अहांकार से परे, र्ाणी से परे, दृस्ष्ि से परे, र्धद, स्पर्,श रूप, रस, गिं से परे।

'ऊध्र्'श का अथ शहोता है-जो आिार स्र्रूप है, स्जसकी जड़ ऊपर को है। भूलोक, भूर्लोक, स्र्गलशोक, महलोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, ब्रह्मलोक, अतल, र्ितल, सुर्ल, तलार्ल, महातल, रसातल, पाताल अनेकानेक ब्रह्माण्ड इसमें है, यह सब र्ाखाए-ूँप्रर्ाखाएूँ िैली हुई हैं।

ऊध्वमूिलमधः शाखमश्वत्थ प्राहुरव्ययम् ्।।

अव्ययम्–्अव्यय के दो अथ शहोते ेहैं। अव्यय-अर्र्नार्ी और अव्यय- जो कभी खत्म न हो, पूण शका पूण श रहे। यहा ूँपर अव्यय का अथ शपूण शका पूण शलगेगा, क्योंफक यह ससांार का तारतम्य तो बदां होना नहीींहै, लगा ही रहेगा। कभी बदां नहीींहोना है। आज उत्पस्त्त है तो कल प्रलय, आज सृजन है तो कल सहांार। यह तो उत्पस्त्त, प्रलय, सहांार अनाहद काल से चला आ रहा है, इसमें कभी कमी होनी नहीींहै। उत्पस्त्त करके पूण,श पालन करके पूण,श सहांार करके पूण।श क्या कमी है?

यह प्रतीत होते ेहुए भी न बना है और न फकसी ने बनाया है। यह प्रपचां भास क्यों रहा है? तो भैया ! यह कोई जरूरी नहीींहै फक जो चीज होती है, र्ही भासती है। जो नहीींहै र्ह भी हदखायी देती है। आकार् में नीमलमा हदख रही है, र्ह नहीींहै फिर भी हदख रही है। रज्जु में सप शनहीींहै फिर क्यों हदख रहा है, प्रतीत हो रहा है। मृग-तृष्णा में जल नहीींहै, फिर क्यों नदी हदख रही है? ठूँठ में पर्ुाच नहीींहै, फिर क्यों हदख रहा है?

एक अिंिा और एक आखूँ र्ाला रास्ते ेमें दोनों आिंिी में पड़ गये हैं, तो इस आिंिी में बेचारा अिंिा, उसकी तो आखूँ ही नहीींहै, फकसी न फकसी खड्डे में धगर जाता है और आखूँ र्ाला मनुष्य कोड शन कोई सहारा, आिार को पकड़ लेता है और र्ह नहीीं उड़ता, बच जाता है। इसी तरह ससांार में दो तरह के मनुष्य होते ेहैं, ज्ञानी और अज्ञानी। ज्ञानी आखूँ र्ाला है और अज्ञानी अिंिा और दोनों के मलए माया रूपी आिंिी आती है। जब माया रूपी बर्डांर आ जाता है तो दोनों उसमें पड़ जाते ेहैं। जानी र्ीरिा अपने ज्ञान से आत्मा रूपी खम्भा में आत्मा ब्रह्म पररपूण शहै।

मुझ आत्मा में क्या होने-जाने र्ाला र्ि्चारहीन अज्ञानी, बुद्धिहीन, र्िाा र्िषय रूपी गड्ढे में कही ांन कही ांधगर जाता है।

एक बार एक नदी में पानी बढ़ा हुआ था। कुछ पधथक नार् से नदी पार कर रहे थे। उस नार् में एक मस्त भी बैठा था। जब नार् बीच दररया में आयी तो बड़ी जोर से तूिान आया-मल्लाह को जब तूिान आता हदखाई हदया तो र्ह घबरा गया। उस समय र्ह मस्त कहता है-अरे मल्लाह तू क्यों घबरा रहा है। तब मल्लाह कहता है- 'हुजूर! तूिान आ गया है। अब बहुत करीब है और नदी का फकनारा दूरू है, अब म ैंकुछ नहीांजानता, क्या होना?" तो मस्त हूँसता है और कहता है-

कापूँता है हदल तेरा अंदेश-ए-तूिा ूँसे क्यों ॥

क्यों घबरा रहा है. जबफक -

नाखुदा तू बहर तू फकश्ती भी तू साहहल भी तू ॥

यह दररया भी तू है और साहहल (फकनारा) भी तूहै। जब तेरा ही खेल है, तो मरा क्यों जाता है। ज्ञान तक तो त्रिपुिी रहती है। म ैंशरीर नहीांआत्मा हूूँ। यहाूँतक ज्ञान है और जो गुणातीत पद, अमनस्क पद, स्र्भार् पद, सहज पद, तूष्णी पद पर स्स्थत है, जहा ूँन सत् ्है, न रज, न तम, न जीर् भार्, न मुक्त भार्, न आत्म भार्, न ब्रह्म भार्, न मोक्ष भार्, न बद् भार्। इन सब भार्ों के अभार् का नाम गुणातीत पद है।

यह ससांार त्रबजली का ए.सी. करेन्द् है। त्रबजली के दो प्रकार के करेन्द् होते ेहैं-एक ए.सी. और डी. सी.। डी.सी. करेंि इतनी खतरनाक नहीांहोती। इसके छू जाने से मरोगे ेनहीांयह दूरू िेंक देती है। परन्द्तु, ए.सी. करेन्द् बड़ी खतरनाक होती है। जरा-सा स्पर् शफकया नहीांफक बस धचपक गये। ऐसेही यह सब ससांार ए.सी. करेंि हैं। जरा-सा लगार् हुआ नहीांफक बस धचपक गये। जैसे–बहुत से साधुओांके पास कुिी नहीांरहती तो र्े समझते ेहैं फक चलो बरसात में मसर ढाकूँने के मलए जगह हो जाय तो अचछा रहता, इस एक कुहिया बन जाती है। बाबा जी एक झोंपड़ी बना लेते हैं बस ए.सी. करेंि लग गया। अब कुहिया बन गयी। भगत लोग गुरु-पूणणमशा में आयगें ेतो उनके रहने के मलए स्थान चाहहए। दालान बना। दुतुनया में हम यही देखतेहैं। जरा यह ससांार का लगार् लगने की देरी है, फिर कोठार-भण्डार भी बना। बस, गीता िैलनेलगी। िैलते-िैलते चूल्हा भी आए, चक्की भी लगी, तो फिर उसकी अधिकाररणी भी आनी चाहहए। िैल गयी गीता। इतना कह देना कािी है। अक्लमन्द्दे इर्ारा कािी अस्ता जब बाबा लोगों का यही हाल है, तो गृहस्स्थयों को क्या कहें। तुम्हारे मलए तो जरूरी है। पहलेदो प्राणी थेतब एक ही घर में काम चल जाता था। फिर बिे हुए पुि-पुत्रि आयी तो बिे-बहु कहा ूँरहेंगे? े बस, ऐसा ही समझ लो। गीता िैल रही है। तुम्हारे पास और कोई गया र्ह भी धचपक गया।

समझो ससांार सेसार्िान रहो। ए.सी. करेंि से दूरू रहो। बिेर्ान होकर भजन करो। यहद, र्िद्र्ान हो तो जनता का कल्याण करो। भला करो। चाहे स्जस सम्प्रदाय के हो।

तनद्विन्द्धो हह महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।

फिकर सभी को खा गई फिकर सभी का पीर ।
फिकर की िांकी जो करै ताको नाम िकीर ॥

ससाांर मसनेमा है, नकली है। इसे ेदूरू से देखो। सत्य क्या है-परमात्मा । और असत्य है-ससाांर। ससाांर को देखना हो तो दूरू से देखो और भगर्ान को देखना हो तो नजदीक से देखो और इतनेनजदीक से देखो फक अपनेसे मभन्द्न मत देखो तब भगर्ान हदखेगा।

ऊध्वमूिलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ्।
छन्दांमस यस्त्य पणातिन यस्त्तं ंवेद स वेदत्तवत् ्॥

(गीता 15/1)

र्ेदों को ससाांर-रृकूष का पत्ता क्यों बताया है? क्योंफक, स्जस रृकूष में पत्तेते नहीांहोते, े र्े सुन्द्दर नहीांलगते, सुर्ोमभत नहीांहोते। ठूांठ थोड़ेही अचछा लगता है। ऋग, यजुर्,श साम, अथर् शर्ेदें में कमकशाण्ड का र्ृषय दर्ायशा है। स्र्ग-शनरक और अनेक कमों का र्णनश हुआ है, ये सभी र्ेदों में आते ेहैं। है। स्र्ग-शन के आर्ागमन का चक्कर लगा रहता है। भगर्ान इन्द्हें पिो इसीमलए कहते ेहैं फक इनसेआर्ागमन का चि लहलहाता रहता है। ससाांर रूपी रृकूष में कम शजाल न होगा, तो ढूँठ ही हूँठ रह जायेगा। इसमलए लहलहाने दो-

अथश्चोध्वं ंप्रसृतास्त्तस्त्य शाखा गुणप्रवृद्धा त्तवषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततातन कमानिुबन्धीतन मनुष्यलोके ॥

(गीता 15/2)

यहाूँतो भगर्ान ने ऐसा बताया है और श्रीमद् भागर्त में जहा ूँभगर्ान की गभस्शतुतत की गयी है, जन्द्म के समय -

एकायनोऽसो द्त्तविलन्द्स्त्रमूलिश्चतुरसः पंचंत्तवधः षडाटमा ।
सप्सत्वगष्टत्तवटयो नविाो दशच्छदीद्त्तवखगो ह्याा हदविृः ॥

(27/दसम् ्स्कन्द् 10/2 / 27)

श्री रामायण के उत्तरकाण्ड में र्ेदों ने श्री भगर्ान के राज्यामभषेक में स्तुतत की है।

अव्यक्त मूलमनाहद तरु त्वच चारर तनगमागम भने।
षटकंध साखा पंचं बीस अनेक पन िसुमन घने ॥
लि जुगल बबधध कटु मधुर बेमेल अकेमल जेहह आधश्रत रहे ।

पल्लवत ि्लत नवल तनत संसांर बबटप नमामहे ।।

(रा.उ. रे्द स्तुतत छां. 5)

यहाूँपर भी ससाांर रू्कृष का यही भार् है -

न रूपमस्त्येह तथोपलभयते नान्तो न चाहदन िच संप्रततष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुत्तवरुढ्मूलमसङ्गशस्त्रेणे हढ़ेन तछत्वा ।।

(गीता 15/3)

र्ाह भाई-इस ससाांर का कोई रूप नहीांहै। न इसका आहद है, न इसका मध्य है और न अन्द्त है। न इस

प्रपचां का, कही ांपर भी इस्थतदा है (रुरू है), न इस्न्द्तहा है (आणखरी है) और न इसका दममयशान है (मध्य है)। असगां र्स्णि-इस रू्कृष को कैसे ेकिाना चाहहए, कौन-सी कुल्हाड़ी से किाना चाहहए। ये एकादर् है -

अमूलमेतद् बहुरूपरूत्तपतंमनोवचः प्राणशरीरकम ि।
ज्ञानामसनोपासनयतत मशवेनन्द्च्छत्वा मुतनगों त्तवचरत्यृष्णः ॥

(श्रीमद् भा. 11/28 / 1)

फिर इसे ेकैसे ेकिें? रै्राग्य र्स्णि। रै्राग्य र्स्यि फक लक्षणम्।्

देखो-

न्दृष्टं ब्रह्म मतयं ंकृत्वा .... ।

फकसी भी चीज को नारायण-आत्मा के अततररक्त उसका अस्स्तत्र् न मानना, यही असगां र्स्ि है। यहद सत्य घनभूत 'म'ैं सेमभन्द्न फकसी भी चीज को मानते ेहो तो ससाांर का जड़ मजबूत होता है और जब अपनेसे मभन्द्न न जानो तो यही ससाांर को किाने ेकी युस्क्त है। जहाूँपर तुम्हें स्थूल, सूक्ष्म ससाांर हदखाई पड़े हीांहधथयार से किा दो 'म ैंहूूँ।' बस, किा हदया। मसर्ाय 'म'ैं आत्मा के कुछ है ही नही।ां एक ततनके को भी अपने स्र्रूप से अलग न मानो।

यहाूँपर र्ष्य अध्यारोप और अपर्ाद का है। यह ससाांर हुआ-हुआ सा भास रहा है, अनबना-बना सा भास रहा है। माता श्रुतत से महात्माओ ांने अज्ञानी बालकों को समझानेके मलए नाना प्रकार की युस्क्तयों द्र्ारा समझाया है फक फकसी प्रकार सेयह दृश्य आखूँों से ओझल हो जाये। नारायण के मसर्ाय कुछ दूसूरा न भासे। इसमलए रामायण, भागर्त् ्र्ास्-पुराण आहद में सतां-महात्माओांने नाना प्रकार से दृष्ान्द्तों द्र्ारा समझाया है। यह भी अध्यारोप है।

सोकामयत बहुष्यां प्रजायेतत स तपोतप्यत ।
स तपस्त्तप्त्वा इदं सवमिसृजृत यहददं फकं च तत्सृष्ट्रवा तदेवानुप्रात्तवशत् ्॥

'म ैंएक हूँ और अनन्द्त हो जाऊँ' - श्रुतत इसमलए कहती है फक स्जसकी स्थूल बुद्धि है जो, अजातर्ाद नहीं समझ सकते, उसकी समझ में आ जाये। भगर्ान ने ही यह सकांल्प फकया फक म ैंएक हूँ और अनन्द्त हो जाऊँ, इसमलए भगर्ान सब कुछ नाम रूप में ही हैं। भगर्ान ही नाना रूप िारण कर, ससाांर बनकर इसी में प्रर्ष्ट्ि हो जाते ेहैं।

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमजुनि ॥

(गीता 9/19)

'म'ैं ही अमृत हूँ, 'म'ैं ही मृत्यु हूँ। 'म'ैं ही सत् ्हूँ, 'म'ैं ही जड़ हूँ। 'म'ैं ही चेतन हूँ, इसमलए फक ससाांर-पना इसकी आखूँ सेतनकल जाय, इनकी आखूँ में भगर्ान ही भगर्ान हदखे। सबको दण्ड प्रणाम करना चाहहए. क्योफक जीर् रूप से भगर्ान सभी में प्रर्ष्ट्ि हैं।

यहद ससाांर की उत्पत्त्त मानते ेहो तो यहा ूँपर प्रश्न होता है फक जब ससाांर पैदा हुआ तो पैदैा होने के पूर् श इसका क्या स्रूप था। सत्य था फक असत्य था। भार् रूप था अथर्ा अभार् रूप था। यहद सत्य था तो फिर श्रीमान् ् जी सत्य की तो उत्पत्त्त ही नहीांहोती। सत्य मानकर ससाांर की उत्पत्त्त मसद्ि नहीांहोती और यहद ससाांर बनने के पहले ेअभार् रूप था तो अभार् तो असत्य होता है। इसमलए ससाांर को असत्य मानकर भी इसकी उत्पत्त्त मसद्ि नहीांहोती। यहद, कहो फक ससाांर सत्यासत्य है तो भी नहीं बनता। इसमलए, ससाांर फकसी भी हालत में पैदा हुआ ही नही।ां यह बध्ांयापुित्र् ्है। यहाूँपर स्जज्ञासु प्रश्न करता है फक ससाांर को बध्ांयापुि कहा है। बध्ांयापुि तो हदखता नहीं, परन्द्तु यह ससाांर तो हदख रहा है। भैया, बध्ांयापुि से अनुत्पत्त्त अ्ांर् लेतेहैं। पैदा हुआ ही नही।ां यहद, कहो- फकसी युर्ती का मुख 'चन्द्रमुख' है। चन्द्रमा के समान मुख है। चन्द्रमा थाली-सा हदखता है और उसका मुहूँ तो ऐसा नही ांहै। चन्द्रमा से हम कास्न्द्त भाग लेते ेहैं।

माया सेइसकी उत्पत्त्त भलेही मान ले। जैसे–े इन्द्रजाल का इन्द्रजाली पैसे-पैसे के मलए इिर-उिर घूमता रहता है, रैसेर्ह हजारों की ढेरी लगा देता है। क्या ये रुपये-पैसेसत्य हैं। इन्द्रजाली मसर कािा देता है और फिर कािा कर जोड़ देता है। क्या सचमुच मसर कािा? क्या कािा हुआ मसर फिर जुड़ेगा। नहीं, सब असत्य है। इन्द्रजाली के इन्द्रजाल को देखकर बड़े- बड़ेर्मुग्ि हो जाते ेहैं। परन्द्तु, जो इन्द्रजाली का दोस्त होता है, जो उसका यार होता है र्ह उसकी पोल जानता है। यह ससाांर है इन्द्रजाल और इन्द्रजाली है स्रूप आत्मा। उसी में इन्द्रजाल हदख रहा है। स्जसने इन्द्रजाली भगर्ान आत्मा सेयाराना फकया है र्ह इस इन्द्रजाल ससाांर से र्मुग्ि नहीांहोता। इसमें कभी नही ांपड़ता।

सो नर इन्द्िजाल नहह भूला । जा पर होइ सो नट अनुकूला ।

नटकृत त्तवकट कपट खगराया। नट सेवकहह न व्यापइ माया ||

(रा. उत्तर)

इस पर एक आख्यान है श्रीमद्भागर्त का। फकसी समय जब भगर्ान लीलाािारी श्री कृष्ण र्ृन्दार्न में लीला कर रहे थे, गोर्पयों ने भगर्ान से तनर्ेदन फकया फक भगर्न् ्यमुना के उस पार महर्षि शदुर्ासशा पिारे हैं। आपकी आज्ञा हो तो उनका दर्शन कर आयें, भोजन करा आयों भगर्ान कहते ेहैं तुम्हारी जानेकी इचछा है तो जाओ, जब यमुना जी के पास पहुूँची उस समय यमुना जी बढ़ी हुई थी और हूँयमुना जी को पार करने का नार्, (डोंगा) आहद कोई सािन न ममला। गोर्पयाूँतनरार् होकर र्ार्पस भगर्ान के पास लौि आयी। भगर्ान ने पूछा फक यहद तुम लोगों का जाना जरूरी है तो हम एक मिां बता रहे हैं और इस मिां के प्रताप से यमुना माग शदे देंगी। गोर्पयों ने पूछा, क्या मिां है? भगर्ान ने मिां बता हदया -

यहद कृष्णो बालयततः सर्वदोषत्तववन्द्जतिः ।
तहह िनो देहह मागं ंवै कामलन्दी सररताम्बरे ।।

देखो तमार्। यहद श्री कृष्ण जैसे ेफक र्ेदे-र्ास्ि सतां महात्मा बताते ेहैंफक अचयुतानन्द हैं, अखण्ड ब्रह्मचारी हैं, तो हे यमुने तू माग शदे दे। गोर्पयों ने इस मिां का पाठ फकया तो यमुना में जल ससिश चार अगुांल रह गया। यमुना पार करके महर्षि शजी के पास गयी। उनको कोई आश्चय शनहीांहुआ, क्योंफक मन में तो पूजा की िुन थी। जब महर्षि शजी को पूजन-भोजन करा चुकी ांतो गोर्पयों ने आज्ञा मागीं र्ापस जाने के मलए। बाबा ने आज्ञा दे दी। गोर्पयों ने कहा फक जायें कैसे,े यमुना तो बढ़ी हैं। बाबा पूछने लगेफक फिर आयीांकैसे।े श्रीकृष्ण जी ने जो मिां हदया था ई गोर्पयों ने बताया और कहा इसी मिां के बल से यमुना ने माग शदे हदया। मिां को सुनकर बाबा हूँस पड़े। बड़ा बहढ़या मिां है। हमारा भी मिां सीख लो यमुना से कहना फक बाबा दुर्ासशा अगर कुछ भी न खाये हों, हाथ से भी न हुए हों तो माता यमुने माग शदे दे! यह मिां गोर्पयों ने कहा तो यमुना ने माग शदे हदया, क्योंफक बात सचची थी। इस पार गोर्पयाूँयमुना की रेती में मसर िरकर बैठ गयीांफक सरासर झूठों का बाजार गरमागरम है। श्रीकृष्ण भी झूठे, बाबा दुर्ासशा भी झूठे और तनगोड़ी यमुना भी झूठी जो गर्ाही दे रही है। यह रहस्य उस समय कुछ भी समझ में नहीांआया। र्ृन्दार्न में एक समय नारद जी आये। गोर्पयों ने यह प्रश्न रखा फक श्रीकृष्ण कैसे ेबालयततः और दुर्ासशा कैसे ेकुछ नहीांखाये। नारद जी ने बहुतेरा समझाया, परन्द्तु गोर्पयों की समझ में कुछ न आया? क्यों नही ां आया? इसमलए फक गोर्पयों को भगर्ान के र्ास्तर्र्क स्र्रूप आत्मा का बोि नहीांहुआ था। गोर्पयाूँभगर्ान के लीलाािारी स्र्रूप की उपाससका थी।ां लीला रूप में तनष्ठा थी। एक बार कुरुक्षेि में सूय शग्रहण के समय भगर्ान के साथ सब इकट्ठे हुए। उस समय भगर्ान ने अपनेस्र्रूप आत्मा का बोि कराया, तब यह रहस्य समझ में आया फक श्रीकृष्ण बालयततः है और बाबा दुर्ासशा भोजन नहीांफकये। यह रहस्य ही ऐसा है, यद्यर्प कुछ नहीांहो रहा है, ससांार तीन काल में नहीांहै। कौन मानेगा, जागने के बाद ही तो स्र्प्न कहोगे। जब स्र्प्न अर्स्था में ही हो तब तो स्र्प्न नहीांकहोगे। स्र्प्न का रष्टा स्र्प्नार्स्था में 'म ैंस्र्प्न देख रहा हूँ ऐसा नहीांकहता। जब जागता है तब

कहता है- 'मनैं स्र्प्न देखा।' दुतुनयाूँरामायण पढ़ती है-

उमा कहउूँ म ैंअनुभव अपना । सत हरर भजन जगत सब सपना ॥

(रा.आ.)

इसमलए भैया ससांार की उत्पत्त्त तीन काल में नहीां है। सब कुछ नारायण ही है, सब कुछ र्ासुदेर् है, ऐसा

जानो।

श्रुतत भी तो जगत् ्की उत्पत्त्त बताती है। भैया, जगत् ्की उत्पत्त्त तो बताती है फिर अपर्ाद भी तो कर देती है। फकस प्रकार -

अध्यारोपापवादाभयां ांतनश्प्रपंचं प्रपंचते े।

जो परमात्मा ब्रह्म, सृसूष्कि के आहदकाल में ब्रह्मा को समाधि अर्स्था में उन्द्हें र्ेद सुनाया, स्जनकी कृपा से र्ेद प्रकि हुए, उनकी र्रण में म ैंहूूँ। इससे मालूम होता है फक ससांार पैदैा हुआ है, लेफकन आगे ेचलकर श्रुतत यह भी कहती है -

एकमेवाद्त्तवतीयंब्रह्म नेहनानान्द्स्त फकंचन ||

एक ही चेतन परमात्मा है। इसके मसर्ाय कुछ भी नहीां, कुछ भी नही।ां श्रुतत के र्ाक्य में इतना र्र्ोिभास! तो कहते ेहैं, यहा ूँर्र्ोिभास नही ांहै। पूर्ा शपर र्र्ों नहीांहै। ई अध्यारोप है और यह अपर्ाद है। श्रीमद्भागर्त के दर्म स्कन्द्कि के एकसठर्ें अध्याय के पहले ेश्लोक में कहते ेहैं -

एकैकशस्ताः कृष्णस्त्य पुरान् ्दश दशाबलाः।
अजीजनन्ननवमान्द्न्पतुः सवात्मिसम्पदा ॥

श्री कृष्ण महाराज की सोलह हजार एक सौ आठ रातनयों से एक-एक से दस-दस पुि उत्पन्द्न हुए। फिर उसी के नीचे के चौथे श्लोक में श्री र्ुकदेर् जी कहते ेहैं -

स्त्मायावलोक लवदमशतिभावहारर भूमण्डलप्रहहतसौरत मन्त्रशौण्डे पत्न्यस्त्तु षोडशसहस्त्र मनङ्गबाणैयस्त्येन्द्न्यिं त्तवमधथतुं करणैन िशेकुः ॥

तो क्या पुि आसमान से आये? कहा ूँसे आये? सोलह हजार एक सौ आठ रातनयों के मध्य में रहते ेहुए भी कामदेर् भगर्ान श्रीकृष्ण में काम प्रदीप्त करने में समथ शनहीांहुए। त्रबल्कुल उलि गया। यह क्या है? अध्यारोप और अपर्ाद। त्रबना बिो हुए यह चीज लगती नहीांहै, समझ में र्ीघ्र नहीांआता। इसमें हर एक रातनयों के दस-दस पुि हुए, यह अध्यारोप है और श्री कृष्ण भगर्ान आसकाम हैं, उन पर काम का कोई प्रभार् नहीांहै, कुछ नही ांहुआ, यह अपर्ाद है।

व्यालपास बस भये खरारी ॥

यह अध्यारोप है।

स्त्वबस अनन्त एक अधधकारी ।।

(रा.ल.ां)

और यह अपर्ाद है।

अभार् में भार् की उत्पर्त्त का नाम अध्यारोप है तथा भार् और अभार् दोनों के अधिष्ठान को जानकर फकये हुए अध्यारोप का खण्डन कर देनेका नाम अपर्ाद है। इसका तात्पय शलगाओ। श्रुतत यहूाँऐसी और हूाँर्ैसी क्यों कही? देखो -

मृगतृषूणा की नदी बह रही है, उसे ेकोई छोिा बालक देखकर, अपनेर्पता से कहता है फक यह क्या बह रहा है? ये कैसी नदी है? कहा ूाँसे तनकली है? तीन काल में पानी नहींहै। एक बूदां भी नहीं, परन्द्तु बह रहा है। र्पता ने सोचा फक अबोि बालक है। समझानेपर न समझेगा इसमलए कहा फक र्र्स, र्ंध्यांयाधगरी पर्तश पर बध्यांयापुि ने एक असत्य का तालाब खुदाया है। उसमें असत्य का जल भरा है। हींसे यह नदी तनकली है। अबोि बालक ने उसी को ठीक समझ मलया। जब बड़ा हुआ फिर मृगतृषूणा को देखा। फिर अपनेर्पता से प्रश्न फकया फक यह क्या है? बुड्ढे ने सोचा फक यह बालक नहींरहा। बुद्धि में र्ंचारर्ीलता पैदा हो गयी है। अब यह पहले ेजैसा कहने से न मानेगा। र्पता ने कहा फक तुझे ेपहले ेबताया था फक र्ंध्यांयाधगरी में बध्यांयापुि के खुदर्ाए तालाब में असत्य का जल भरा है और नदी हींसेतनकली है। लड़का हूाँस पड़ा- र्ाह र्पताजी, क्या बध्यांया का पुि भी होता है। उसके र्पताजी ने कहा फक नहीं, यह कुछ भी नहींहै। जूता उतार दो , लड़के ने जूता उतार हदया, पैर जलने लगे,े छाले ेआ गये। पानी कही ांन ममला। फिर उसनेसूय शके तरि हदखाकर कहा फक सूय शभगर्ान का चमत्कार है। रेत में सूय शकी फकरणों के पड़नेसे ऐसा भास हो रहा है, पर है कुछ भी नही।ां अभार् में भार् बताकर सूय शभगर्ान को अधिष्ठान बताकर असत्य जल का अभार् समझाया। नदी का प्रर्ाह है ही नहीं, बताया। अज्ञानी के मलए अध्यारोप और ज्ञानी के मलए अपर्ाद। ससांार नही ांहै ऐसा कहें तो इसे ेकौन मानेगा? र्स्तुतः, था तो आत्मा, हूाँ तो आत्मा और रहूाँगा तो आत्मा। मसिश एक चेतन आत्मा पररपूण शअपनी महहमा में स्स्थत है।

आज का यह जो र्षय है, इसे ेपुरुषोत्तम योग कहते ेहैं। गीता का पन्द्रहर्ा ूाँअध्याय -

न रूपमस्त्येह तथोपलभयते नान्तो न चाहदन िच संप्रततष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुत्तवरूढमूलमसंगशस्त्रेणे दृेन तछत्त्वा ||

(गीता 15/3)

असगां का अथ शहोता है र्ैराग्या र्ैराग्य दो प्रकार का होता है। एक सोपाधिक और दूसूरा तनरुपाधिका घर में, समाज में या कही ांपर कोई हृदय में ऐसा र्ंक्षेप पैदा हो जाय, स्जसके कारण उसे ेर्ंषयों से र्ैराग्य हो जाय। फिर र्ंषयों सेभागता है और फकसी महात्मा से सिसगां द्र्ारा जब र्ेर्ंक पैदा हो जाता है तब र्ंषयों के अस्स्तत्र् का त्याग हो जाता है। र्ेर्ंक क्या है? तनत्यातनत्य र्ेर्ंकः। तनत्य र्स्तु क्या है?

हूँ नहह तन मन वचन बुद्धध जातत वरण कुल एक ।
म ैंहूँ चेतन सबन में याको कहत त्तववेक ॥

न तन, न मन, न र्चन, कुछ नहीं, यह सब म ैंनहींहूँ, 'म'ैं आत्मा हूँ। इस प्रकार का र्ेर्ंके जब बुद्धि में आ जाता है तो र्ेर्ंकनी बुद्धि द्र्ारा र्ंषयों का जो र्ंलास है इसको त्याग देना, इसको कहते ेहैंर्ैराग्य। यह तनरुपाधिक र्ैराग्य है, जो र्ेर्ंकनी बुद्धि द्र्ारा होता है। तनरुपाधिक र्ैराग्य लाखों में एक को होता है। अधिक सोपाधिक र्ैराग्य होता है। यह एक जन्द्म के पुण्य के तप का िल नहींहै। र्ैराग्यर्ान को चाहहए फक जल्दी से जल्दी श्रुतत, सतां महात्मा की र्रण में जाये। मसद्धिर्ोर्ानः को र्ंचरने की आज्ञा है, परन्द्तु र्ैराग्यर्ान को र्ंचरने की आज्ञा नहींदी जाती। इसमलए फक अभी इसको पूण शज्ञान हुआ नहींहै, धगर सकता है। अनेक जन्द्मों के पुण्य से इसे ेर्ैराग्य उदय हुआ है। ऐसा न हो फक सगां-दोष से र्ैराग्य मन्द्द पड़ जाये। इसमलए उसे ेर्ैराग्य को एकान्द्त सेर्न कर पकाना चाहहए- सुष्न्द्िाय के समान। खुष्ि कहते ेहैं-खूँिे को, स्जसमें घोड़ेआहद बाँिे ेजाते ेहैं। जैसे ेखूँिे को बार-बार ठोंक कर गाड़ा जाता है, मजबूती से, कही ांबलर्ान घोड़ा उखाड़कर भाग न जाय। इसी तरह र्ैराग्यर्ान को सास्त्र्क आहार का सेर्न कर, सत् ्ग्रर्थों का अध्ययन कर, सत्सगां द्र्ारा र्ैराग्य को पकाना चाहहए। र्ैराग्य को पकाया जाता है, क्योंफक यह डर है फक घूमेगा तो धगर जायेगा। प्रपचां में िूँस जायेगा। कुहिया बनाने लग जायेगा, स्थान िारी हो जायेगा, रुपये कमानेमें लग जायेगा और कीतत शके साथ धयाह कर लेगा। देखो भैया तीन बहनेहैं-कीतत,श कांचन और काममनी। इनका र्ंयोग एक क्षण के मलए भी नहीं होता। घर में सबसे बड़ी बहन पहले ेआती है-कीतत।श फिर पीछे दोनों बहनों को आना ही है। कीतत,श कांचन और काममनी के साथ कौन धयाह करता है? इसको लोकैषणा भी कहते ेहैं। ये ऐसी चुड़ैल है फक बड़े-बड़ेसािुओ ांको हहमालय पर्तश की गुिा से कान पकड़कर मैदान में लेआती है और जैसे ेबन्द्दर सापूँ को पकड़कर पत्थर में रगड़ता है और कहता है 'िूँ-'िूँ इसी तरह से चुड़ैल मैदैान में ले आती है और 'िूँ 'िूँ करके रगड़ती है, स्जदांगी बरबाद हो जाती है। सािुओ ांसे धयाह करती है कीतत,श हमारा नाम हो। अखबारों में नाम देते ेहैं और जहा ूँकीतत शबड़ी बहन आयी तो कांचन आनी ही है और फिर तीसरी बहन-गोर्ंन्द्दाय नमोनमः । स्जसने व्यस्क्तत्र् की रक्षा की, र्ह कतव्शय की उपेक्षा करेगा। व्यस्क्तत्र् की रक्षा में कतव्शय की उपेक्ेषा है। आज देख लो, नैततक क्षेत्र में क्या, राजनैततक, िाममकश सभी प्रकार के क्षेत्रों में यही हालत है। कौन देखता है फक जनता कहा ूँजा रही है। अपने व्यस्क्तत्र् की रक्षा में सब मरे जा रहे हैं। कौन, फकसको देखता है? क्या सुख है, क्या दुःख है। अपनेआपको ममिा देना पड़ता है, तब कत्तव्शय बनता है। कत्तव्शय-परायण बनना कोई खाला जी का घर नहींहै। या तो व्यस्क्तत्र् की रक्षा कर लो, या कतव्शय की रक्षा कर लो। ससांार में इस तरह रहना चाहहए फक कोई न जाने।

मुक्तोद्गार 65 ससाांर-रूकूष को कौन से रै्राग्य से किाा जाय-सोपाधिक से या तनरुपाधिक से। इस ससाांर रूकूष को न सोपाधिक से

किाो और न तनरुपाधिक से किाो, बस्ल्क परम रै्राग्य सेकिाो।

कहहय तात सो परम त्तवरागी । दूनू सम मसद्धध तीतन गुण त्यागी ॥

(रा. आरण्य. 14/8) सूघांा,

जो कुछ सुनाई पड़े, भार्ना करो फक 'म'ै हूूँ। जो कुछ नाक से भार्ना करो फक 'म'ै हूूँ

न्दृष्टं ब्रह्ममयीकृत्वा पश्येत् ्ब्रह्ममयं जगत् ्॥

देखो-सोपाधिक रै्राग्य और तनरुपाधिक रै्राग्य तक तो र्ष्य र्लास का त्याग होता है, र्ष्यों के अस्स्तत्र् का त्याग नहीांहोता। यह तो बोि होनेपर ही होता है। इस रै्राग्य में भोग से घृणाा हो जाती है, परन्द्तु 'र्ष्य' र्ष्य रह जाता है और बोि होनेपर यह 'र्ष्य' र्ष्य नहीांरहता, सब कुछ नारायण है। इसमलए उसके अस्स्तत्र् का त्याग होता है। यही परम रै्राग्य है, यही र्स्ृ है। यह हधथयार साथ में रखना चाहहए। भजन vec a . जप में, ध्यान में, िारणा में बैठै रहो। चाहे तनरालम्ब ध्यान हो या सालम्ब, स्जसकी जैसी सािना है, जहा ूँतुमने 'म'ै हूूँ भार्ना फकया तो जानो उस रूकूष को किा हदया। क्योंफक नाम रूप ही ससाांर है।

रघुपतत भगतत वारर छामलत धचत बबनु प्रयास ही सूझे ।
तुलसीदास कह धचत्तवलास जग बूझत-बूझत बूझे ॥

(र्नय 124)

यहाूँतीन बार बूझत-बूझत बूझे ेकहा है। मन के रुद्ि हो जाने पर ससाांर धचर्लास लगता है तो यह तीन बार बूझत-बूझत बूझे ेक्यों कहा? इसका क्या तात्पय शहै?

कोऊ कह सत्य झूठ कह कोऊ । जुगल-प्रबल कोउ माने||

(र्नय 111)

मानसकार कहते ेहैं फक तीनों भ्रम है। जहा ूँपर त्रिपुिी है र्हा ूँतक सब भ्रम है। बूझत-बूझत और बूझे ेयही तीनों भ्रम है। यद्यर्प, यह नारायण है, परन्द्तु जीर् उसेससाांर मानता है। अनाहदकाल का 'यह ससाांर मानना' अभ्यास है।

अभी अनुभर् कर लो। क्योंफक यहाूँतो सबको अनुभर् कराया जा रहा है। जैसे, फकसी चीज को देख रहे हो, दृश्य आता है, परन्द्तु दृश्याकार रृत्त नहीांरहती। कभी-कभी ऐसा होता है फक कभी कोई आया और तुम्हारे सामने खड़ा है, परन्द्तु तुम कुछ ऐसे तल्लीन हो फक उिर ध्यान नहीांहदया। तो तुम पूछते हो फक कब आये? सामनेर्ाला कहता है फक घांिा हो गया, आपके पास बैठा हूूँ। र्ेदान्द्त का स्र्रूप बता रहे हैं, व्यर्हार में। स्जस समय कौन होठा

मुक्तोद्गार 66 है, कौन खड़ा है, इसकी तरि रूरूत्त नही ंजा रही है, उस समय सब कुछ 'म' ैं हूँ। नाम, रूपाकार रूतृत बनी

फक ससांर

खड़ा हो गया। 'म' ैं हूँ बस फिर जैसी की तैसी स्स्थतत है। अभी जो ये बताये हैं न यह प्रफिया बड़ी र्लक्षण है। दृश्य तो बाहर है ही नही।ां दुतुनयूँ इस प्रपचां सेभागने की कोमर् करती है फक यहूँबड़ा प्रपचां है। हहमालय की गुिा में रहो, परन्द्तु जाओगे ेकहा, ूँ हूँभी यह हल्ला तुम्हें सुनाई देगा। हल्ला हमारे हृदय में हो रहा है, बाहर नहींहै। जो देख रहे हो यह भीतर का दृश्य है। यह तुम्हारे स्रूप सेबाहर नहींहै। यह सब कुछ भीतर ही है। भीतर के र्क्षेप का नार् हो गया तो बैण्ड बाजा भी बजता रहे धचतां नहींहै। अगर भीतर र्क्षेप है तब पर्तश की कन्द्दरा में भी र्ातांत नहींममलेगी। तुम्हें असली बात बता रहे हैं। परम रैराग्य का क्या स्रूप है। यहद तुम राम के उपासक हो तो आप सहहत सब कुछ राम है। यहद मर् के उपासक हो तो आप सहहत सब मर् हैं। यही अभेदे उपासना है।

यह अभेद कर्च है। इस कर्च को स्जसने िारण फकया, इसे िारण करने र्ाले के सामने एिम बम भी कुछ नही ंकर सकता।

ेपि ररकॉडडगं द्र्ारा श्रुत प्रर्चन का सक्षांक्षप्त रूप (रायपुर 1963)

6. मन्द्मना भर् मद्भक्तो

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां ंनमस्त्कुरु ।

मामेवैष्यमस युक्त्वैवमाटमानं मत्परायणः ।।

(गीता 9/34)

रास पचांाध्याई का पहला श्लोक -

भगवानत्तप ता रारीः शरदोत्ुल्लिमन्द्ल्लकाः ।

वीक्ष्य रन्तुंमनश्चिे योगमायामुपाधश्रतः ॥

(श्रीमद्भागर्त् ्10/29/1)

इससेमसद्ध होता है फक भगर्ान ने पहले ेमन पैदा फकया। लीलािारी है, उन्द्हें मन की जरूरत पड़ती रहती है। कारण, मन के त्रबना लीला नहीांहोती। भगर्ान का नाम है, चौराग्रगण्य। स्जसके पास जो चीज नहीांरहती, उसी चीज को र्ह चोरी करता है। स्जसके पास कपड़ा नहीांरहता, कपड़ा चुरा लेता है। स्जसके पास िन नहीांरहता, िन चुरा ले जाता है। ऐसेही भगर्ान के पास मन नही ांहै तो मन चुरा लेतेहैं। भगर्ान तो आप्तकाम हैं। परररपूण शहैं। कोई चीज की कमी नहीांहै। परन्द्तु, भगर्ान के पास मन नहीांहै। उसी की चोरी कर लेते हैं, धचत्त चुरा लेतेहैं, धचत्त चोर हैं, जो कोई पास से तनकला नहीांफक धचत्त चुरा लेतेहैं। सामना हुआ फक अन्द्ाि-धचत्त हो गया। मन हमेर्ा चुरा लेतेहैं और अपनेस्ाकि में जमा रखते ेहैं। जब लीला करते ेहैंतब काम में लेतेहैं।

जीर् भार् तभी तक है, जब तक मन है। आत्म देर् में मन नाम का पदाथ शनहीां है। 'मन्द्मना भर्' कहने से भगर्ान का अथ शयही है फक मन समपणश कर दे। मन के समपणश करने पर फिर कुछ देनेको रे्षे नहीांरहता, र्े दोनों एक हो जाते ेहैं। मन के देनेके बाद जीर् ब्रह्म की एकता हो जाती है। जब एकता हो जाती है, तभी भक्त की श्रे्रेणी में आता है। तभी र्ह भगर्ान का सचचा भक्त कहलाता है।

सेवक सेव्य भाव बबनु भव न तररअ उरणारर ।

भजहू राम पद पंकज अस मसद्धांत त्तवचारर ॥

(रामायण उत्तर)

यहाँर्द्र्त समाज है, पढ़े-मलखों का समाज है। जरा समझना, यहाँखीचांातानी का अथ शनहीांहै। पहले े दोहे का अन्द्र्य करो। हे उरगारर गरुड़, सैय्य भार् त्रबनु, सेर्क भर् न तररया सेर्व्य कहते ेहैं, स्ामी को। तो सेर्व्य हुए भगर्ान परमात्मा और सेर्क हुआ जीर्। इसमलए सेर्ा करते–करते ेसेर्क में जब तक सेव्य भार् नहीांआ जाता फक र्ह सस्चचदानन्द्द ब्रहा है तब-तक सेर्क भर् न तररया क्या इस अथ शमें कोई र्कां है? इस अथ शका प्रमाण है -

सोइ जानइ जेहह देहु जनाई। जानत तुमहह तुमहह होइ जाई ।।

(रा. आयो.)

इसमें सेर्क में सेव्य भार् आ गया है।

ब्रह्मत्तवत् ्ब्रह्मव भवतत ॥

(मुण्डक.उप. 3/2 / 9)

इस प्रकार मसद्धातं र्ेचार कर भगर्ान श्रीराम के चरण-कमलों को भजो, सेर्न करो। फकस भार् से? सेव्य भार् से। क्योंफक सेर्व्य भार् त्रबनु सेर्क भर् न तररय और यह सेव्य भार् अभी आ जाय या जन्म जन्मान्द्तर के बाद आये, परन्द्तु जब तक सेव्य भार् से सेर्क और सेव्य दोनों एक नहींहो जाते,े तब तक भर् न तररया प्रेम जगत् ्में भी यही बात है।

श्याम-श्याम रटते-ेरटतेराधा श्याम भई ।
तब फिर पूछत यों सणखयन से राधा कहा ूँगई ।।

दोनों एक हो गये। कहने का साराशं यह है फक सारा दारोमदार मन पर है। इसमलए भगर्ान अजुनश से कुछ न मागं करके, मसिश मन ही माग ूँते हैं। भगर्ान को देनेयोग्य, दातव्य र्स्तु कोई है तो मन ही है। गुरु के मलए भी देनेलायक चीज है तो अपना मन ही है। मन के ऊपर ही जोर क्यों हदया? क्योंफक जो चीज स्जसकी होती है, उसी को र्ह दे सकता है। मन पर ही अपना अधिकार है और फकसी पर नही।ं मन आत्मा की चीज है। अपना-आपका माना हुआ है। इसमलए मन पर अपना पूण शअधिकार है। तुम्हारी स्त्री पर तुम्हारा अधिकार नहींहै। तुम्हारे पुत्र पर तुम्हारा अधिकार नहींहै।

ख्याल करो! यों तो तुम्हारा झूठा दार्ा है मन के ऊपर फक मन तुम्हारे अधिकार में नहींहै। स्जतने बैठे हो, हृदय पर हाथ रखकर बोलो, यह बात सत्य है फक तुम्हारा मन तुम्हारे र्श में है। झूठ न बोलना। यहद तुम्हारा मन तुम्हारे अधिकार में न होगा, तब क्या कथा सुन सकते ेहो? जब मसनेमा के बैठे कौन सी समाधि करके जाते ेहो? बोलो, तुम्हारा मन तुम्हारे हाथ में नहींमें हो? अनुभर् कर सकते हो? आफिस होगा सकतेहो? तो फिर क्यों कहते े हो फक मन बड़ा चचांल है, र्श में नहींक कर सामनेकुछ कसर है? यह तो तनर्र्ेशाद मसद्धातं है फक हर एक का मन बाह हर एक के र्श में हैं। त्रबना मन के र्श में फकये कोई काम हो ही नहींसकता। नह आरओ, अब इस पर र्ेचार फकया जायेगा। अचछा देखो, कोई ऐसा िाइम है भार जब फक यह अनुभर् होता है फक मन चचांल है। र्ह कौन-सा टाइम है? पूजा मुल में, पाठ में, ध्यान-धारणा में बैठतेहैं तब मन बड़ा चचांल हो जाता है, स्स्थर मभन्द्न नहींरहता। आप पूछते हैं, स्र्ामी जी एक बात है, जब पूजा-पाठ, ध्यान- है, िारणा में बैठते ेहैं तो यह मन र्ृंद रूप क्यों धारण कर लेता है? और होल र्ेषयों के अनुभर् करने में मन को स्स्थर करने के मलए कोई सािन करना अर्र नही ं पड़ता, परन्द्तुपूजन में, पाठ में ही मन चचांल क्यों हो जाता है? यह है फक तुम्हारा प्रश्न है। अब उत्तर सुनो। र्ेषयों के अनुभर् काल में तुम्हारे अदांर मन' जीर् भार् नही ंरहता, आत्म भार् रहता है। इसमलए मन का चचांलत्र् प्रतीत

स्ाभ नही ांहोता है, क्योंफक आिम भार् में मन नाम की कोई चीज नहीांहै। परन्द्तु नाम । पूजन में, पाठ में, तुम अपनेको जीर् मानते ेहो। जहा ूँजीर् भार् हुआ फक मनीराम हूँपहुूँच जाते ेहैं। यह अमूल्य चीज है। फिर एक बार सुनो। प्रत्येक अस्था में, प्रत्येक र्षय के अनुभर् करनेमें आत्म भार् रहता है और स्जन आत्म भार् में मन का अत्यन्द्ताभार् है। मन उस समय, उस अस्था में रहता ही नहीांइसमलए र्षयों के अनुभर् करने के मलए मन को स्स्थर करने में आज ह कोई कहठनाई नहीांहोती और पूजा पाठ, ध्यानि–ारणा जीर् भार् में करते ेकुछ ८ हो, इसमलए मन पैदा हो जाता है। म ैंमाला जपूँ, ध्यान- िारणा करूँ, यह बह जा भार्ना तो अपनेको ससाांरी जीर् मानते ेहो, तभी तुम्हें कुछ करनेकी इचछा काल होती है। अपने-आपको तुमने ससाांरी जीर् माना नहीांफक मन पैदा हो गया। बरह क्या भगर्ान की भी कही ांइचछा होती है फक 'म ैंमाला जपूँ।' अभी जो कथा दौडोनेसुन रहे हो यह जीर् भी है ई सुरती है छ, है हनारायण भार् में सुन रहे है, यह हो। र्षय समझ में आ रहा है फक नहीां? क्या इस समय तुम्हें यह भार् होता ई आत होता है फक में सुन रहा हैं? फकसी भी र्षय के दर्शन काल में क्या भान होता ही जाये है फक में सुन रहा हूँ? फकसी भी र्षय के श्रर्ण-काल में क्या तुम्हें भान है फक म ैंदेख रहा हूँ, में सुन रहा हूँ आहद। इन फियाओांका अथर्ा इस प्रकार के कर्पने का अनुभर् तो जीर् भार् में ही होता है। र्धद आहद र्षयों का स्ाभार्क अनुभर्, अनुभर् काल में इसमलए नहीांहोता फक अनुभर् काल में आत्म भार् रहता है। श्रृखांला बिां गयी न। एक र्धद और बता दें। म ैंअनुभर् कर रहा हूँ, इसका भी अनुभर् नहीांहोता। क्योफक आत्म भार् में अनुभर् नहीांरहता। आत्म देर् में अनुभर् की चीज, अनुभर्कताशऔर अनुभूतत, तीनों नहीांरहते। यह त्रिपुिी नही ां रहती। स्ाभार्क र्षयों के अनुभर् काल में स्ाभार्क र्षयों का अनुभर् इसीमलए नहीांहोता फक उस अस्था में आत्म भार् रहता है। दर्शन काल में क्या रष्िा को दृश्य से अपनी मभन्द्नता का अनुभर् होता है? नहीांहोता। रष्िा दर्शन काल में दृश्य से अमभन्द्न होकर देखता है या ममन होकर? अमभन्द्न होकर? तब फिर रष्िा ही है, स्जसका दूसूरा नाम दृश्य है, दृश्य नहीांहै। जब रष्िा दृश्य को देखता है, तब दृश्य से अमभन्द्न होकर ही तो देखता है, तब दर्शन कहा?ूँ केर्ल आत्मा ही आत्मा रह जाती है। इस अस्था में त्रिपुिी नहीांरहती है, उस समय आत्म भार् रहता है। प्रश्न उठता है फक उस काल में मन रहता है फक नहीां? मन तीन काल में नहीां रहता। अगर मन रहता तो मन का स्ाभार्क स्रूप चचांल है, उस समय मन का स्ाभार्क स्रूप चचांलत्र् प्रतीत होना चाहहए। इसमलए आत्मभार् में मन नाम का पदाथ शनहीांरहता। सकांल्प-र्कल्प ही मन का स्रूप है।

न्द्जसको िूलों सेनिरत हो उसको खुशबू से वहशत हो ।
न्द्जस हदल की मचलनी आदत हो फिर कोई उसे ेबहलाए क्यों ।॥

स्जस नदी का स्रूप ही बहना है तो क्या उसे ेकोई रोक सकता है? आज बाांि दो लेफकन तुम्हारे बाांि का कोई महत्र् नहीांहै। बाांि बाांिकर चाहे कुछ काल के मलए रोक लो। क्या ई रुकता है? फकसी न फकसी हदन ई बह जायेगा। यहद येन-केन प्रकारेण सािन करके रोक भी लो तो कुछ काल के मलए ही तुम ऐसा कर पाओगे। फिर क्या उसे ेरुका मानोगे?े स्जस र्ेग बलर्ान घोड़ा भाग रहा हो और तुम पकड़ने दौड़ो, जब पीछे पकड़ने दौड़ोगे तो ई घोड़ा जान जायेगा फक पीछे से उसे ेपकड़ने कोई दौड़ा आ रहा है, ई और दूरू भागेगा। यहद तुम पीछा करोगे ेतो घोड़ेको पकड़ न पाओगे। ई आगे ेदौड़ता ही जायेगा और यहद उसकी तरि न दौड़ो। उसे भागने दो, तब ई ठहर

मुक्तोद्गार 70 जायेगा। भागेगा नहींऔर थककर र्ापस आ जायेगा, र्ातां हो जायेगा। यह एक युस्क्त है। यह भी एक नीतत है।

लोग बीमारी िैलाते ेहैं, मन के पीछे परेर्ान होते ेहैं। मन को नहींरोकना, यही मन के रोकने का सािन है।

ाूजा-पाठ, ध्यान–िारणा, जप इत्याहद में जब कोई बैठता है, उसी समय मन तगां करता है। मन की चचांलता भासती है। उस समय तुम अपनेको क्या मान बैठते ेहो-जीर् भार् या आत्म भार्? फिर ऐसी बीमारी क्यों िैलातेहो? यहद आत्मा मानकर बैठैते ेतो इस आडम्बर की कोई जरूरत नही।ां फिर ये सब करनेकी तुमको आर्श्यकता नहींहै। करना है तो बैठकर आत्म धचतांन करो। बाहर के आडम्बर की जरूरत नहीं, जब तुम अपने आपको आत्मा जानते ेहो। यहद मन की चचांलता स्र्ाभार्र्क न होकर बनार्ी होती तो नष्ट हो जाती। पर, मन की चचांलता उसका स्र्ाभार्र्क स्रूप है तो नार् कैसे ेहोगा? नही ांहोता। आखूँ का देखना स्र्ाभार्र्क है, कान का सुनना स्र्ाभार्र्क है। जब तक देखना है तब तक आखूँ है, जब देखना बदां हुआ तो आखूँ भी खत्म हुई। जब तक सुनांना है तब तक कान है, जब सुनना बन्द हुआ तो कान भी खत्म हुआ। यह स्र्ाभार्र्क है-अिल मसद्िाांत है। मन है तो चचांलता है, चचांलता है तो मन है। मन नहींतो चचांलता नहींऔर चचांलता नहीं तो मन नही।ां प्यारे, तुम सस्चचदानदां आत्मा पररपूण शहोते ेहुए भी अपने-आपको जब ससाांरी जीर् मानने लगतेहो तब िांि-घिां करने लगते हो, उस समय यह मन पैदा हो जाता है और तगां करने लगता है। इन सबसे बचना चाहो तो अपने-आपको जीर् न मानकर, अपने-आपको पररपूण शसस्चचदानन्द आत्मा जानो। तभी इस मन प्रपांच से बचोगे। अिेंरे में काले े नाठा से बचना चाहो तो उस सापूँ को, रज्जु जानो। र्प्रांच से बचना चाहो तो ढूँठ जानो। ऐसे ही ससाांर से, माया से, प्रपचां से, मन से बचना चाहो तो अपनेको व्यापक तत्र् जानो। उस समय न मन है, न ससाांर है और न र्रीर है। तीन ही चीज तो र्ेदान्द्त में समझना है। एक र्रीर, दूसूरा मन और तीसरी आत्मा। स्थूलू पदाथ शमें र्रीर समझ लो। सूक्ष्म पदाथ शमें मन और इन दोनों से परे र्ुद्ि सस्चचदानन्द आत्मा को जानो। बस, र्ेदोन्द्त खत्म। हदन-हदन भर आफिस में काम करते ेहो। लाखों रुपयों का हहसाब करते ेहो, एक- एक पाई का हहसाब ममलाते हो। मजाल है मन िस से मस हो जाय और फिर पूजा-पाठ में, ध्यान–िारणा में ऐसे-ऐसे दृश्य आते ेहैं, जो लाखों बरस हुए मर चुके, आखूँों के सामनेखड़ेहो जाते ेहैं। बताओ, अब उनकी क्या जरूरत है? उनके मलए यहाूँ क्या पड़ी है? दुतुनया ूँतो देख रही है फक ध्यान में लगे हुए हैं, परन्द्तु हाूँक्या मुसीबत बीत रही है। स्जस मस्ती में मस्त होकर तुम्हारे व्यर्हार हो रहे हैं, उसी मस्ती में यह भी भार् नहींहोता फक म ैंब्रह्म हूँ, व्यापक हूँ, जीर् हूँ, पररतछन्द्न हूँ। कुछ बनने में उपाधि है, न बनने में उपाधि नहींहै। सचची ईमानदारी और र्र्ीत इसी में है फक कुछ मत बनो और यहद बनते ेहो तो दूसूरे मुल्क पर हमला करते ेहो, फकतनी आजादी है। फकतनी बेखेबरी है। जब तुम ध्यान में बैठते ेहो तो जभांाई भी आती है, मचछर भी किाते ेहैं, नीदां भी आती है, कमर में ददश भी होता है। तब उठकर बैठै जाते ेहो। भाड़ में जाये ऐसा भजन, जमता ही नही।ां परन्द्तु, र्ैसा हदन भर सारा काम करते ेही हो। बता सब कुछ हदए, नाच देखना है तो जीर् मानो और मस्त रहना है तो मस्त हो ही। डण्ड, कसरत करना है तो करो, ममलना तो कुछ है ही नही।ां

अब इसको सतां र्ाक्य करके और प्रमाणणत कर दें। यह तो अनुभूततया ूँहैं। श्री गोस्र्ामी जी कहते ेहैं -

मेरो मन हहरर्जू ूहठ न तजें ।

तनमश हदन नाथ देऊँ मसख बहु त्तवधध, करत सुभाउ तनजै ै॥

रात-हदन इसको मर्क्षा देता रहता हूँ, परन्द्तु यह मन मानता नही।ां फिर गोस्र्ामी जी दृष्र्ाततां देते ेहैं-

ज्यों जुबती अनुभवतत प्रसव अतत दारुन दुःख उपजै ै।
हवै ैअनुकूल बबसारर सूल सठ पुतन खल पततहह भजै॥

सतां महात्मा बड़ेस्पष्र्क्तार्ा होते ेहैं। कुछ तछपाकर नहीांरखते।

लोलुप भ्रम गृह्र पशु ज्यों जहूँ तहूँ मसर पदरान बजे े।
तदत्तप अधम त्तवचरत तेहेहं ांमारा कबहुँन मूढ़ लजै॥

यहाूँमन के ऊपर दृष्र्ाततां हदया है, युर्ती और कुत्ते का, अन्द्त में कहते ेहैं-

हौं हायो करर जतन त्तवत्तवध त्तवधध अततसै ैप्रबल अजै॥

परन्द्तु इस मन को मनैं अस्जत पाया।

तुलसीदास बस होड तबहहं ांजब प्रेरक प्रभु बरजै॥

(र्र्नय पत्रिका 89)

मन बस में होता है, मगर कब ? जब मन का स्र्ामी-प्रेरक, प्रभु चाहे तो मन बस में हो जाता है। मन का स्र्ामी-प्रेरक कौन?

'उस देर् को जानकर सर् शदुःखों सेछुिकारा ममल जाता है' - ऐसा सुनकर स्जज्ञासु मर्ष्य पूछता है 'को देर्ः ।' र्ह कौन देर् है, स्जसको जाननेसेसर् शदुःखों से छुिकारा ममल जाता है? जो तेरे मन को देखता है, जो तेरे मन का अनुभर् करता है। "यो मनः साक्षी "र्ही देर् है।

"यो मनः साक्षी" र्ह मर्ष्य और दो-चार महात्माओांके पास गया और यही प्रश्न फकया। जब सभी से यही उत्तर ममला तब एकान्द्त में बैठैकर सोचने लगा फक- "मनो मे दृश्यते ेमया" "अपनेमन को देखनेर्ाला तो म ैंही हूँ। दूसूरा कोई नही।ां' र्ह फिर र्ापस महात्मा के पास गया और उसे ेफिर र्हीउत्तर ममला। 'जो मन को देखता है, मन का साक्षी है, मन का अनुभर् करने र्ाला है, र्ही देर् है।' 'मनोमे ेदृश्यते ेमया...।' मेरा मन ही मुझे ेहदखता है, तब म ैंही मन को जाननेर्ाला हूँ। 'तहहदेशस्त्र्मेर्ामस।' अरे, स्जस देर् को तू ढूँढ़ रहा है, र्ह देर् तू ही है। दूसूरा कोई नही।ां जैसे, े तुलसीदास जी कहते ेहैं- 'प्रेरक प्रभु बरजै' मन का देर्, मन का अनुभर् करने र्ाला, मन को देखने ेर्ाला तो म ैंही हूँ। म ैंतो चाहता हूँ फक मन मेरे र्् में हो जाय, फिर क्यों नहीांहोता? भैया, तुम चाहते तो हो, परन्द्तु तुम 'म ैंमन का स्र्ामी हूँ' ऐसा समझकर कब चाहते हो, तुम फकसी सतां महात्मा के पास जातेहो तो कहते ेहो फक मन

बड़ा चचांल है, कैसे ेर्् में हो? मेरे प्यारे आत्मन्,् मन को र्् में करने के मलए सिान पूछ रहे हो और जब महात्मा पूछते हैं तो कहते ेहो फक म ैंतो ससांारी जीर्् हूँ। जब मन की महहमा इतनी लम्बी-चौड़ी गाते हो तो अपनेको ससांारी जीर्् मानते ेहो, तब मन तुम्हारे काबू में कैसे ेहो? चाहते तो हो मन अपनेर्् में हो जाय, परन्द्तु मन का प्रभु अपने को मानते ेनहीां, इसीमलए यह असाध्य बीमारी हो गयी है। क्या, ऐसा भी कोई िाइम है फक कभी मन बुरे में या भले में चला जाय और म ैंन जानूँ? मन बुरे में जाता है तब म ैंजानता हूँ, मन भले में जाता है तब म ैंजानता हूँ।

मन नहीांहै, इस अर्स्था का हदग्दर्नश कराया गया। तुम्हें मन की चचांलता पसदां है तब अपने को जीर्् मानो और तुम्हें मन का अमन पसन्द्द है तो अमन पद में तुम सदैर्् र्र्ाजमान हो। अमन पद कोई बाजारु चीज नहीांजो मोल लेकर ममलेगा। अमन पद में तनरन्द्तर बैठे हो। इसमलए -

मन्मना भव मद्भक्तो मयाजी मां ांनमस्त्कुरु ।

मामेवैष्यमस युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः ॥

(गीता 9/34)

'अरे ही स्र्रूप-र्स्मृतृत है' का भार्् यह है फक आत्मा से मभन्द्न यहद कुछ भी भान होता है। तो यही अरे का स्र्रूप है। स्जस तरह अरे!!! भागो यह तो सप शहै, यह भय तो रज्जु ुमें ही होता है न। बस्ल्क रज्जु ुही है, जो अज्ञिांकार के कारण सप शरूप में भासती है। इसी तरह अपना स्र्रूप ही है, जो प्रपचां रूप में भास रहा है। र्ास्तर्् में माया, मन तथा ससांार फकसी काल में न तो था, न है और न होगा।

'तनर्र््कशल्पता का र्र््कल्प तनर्र््कशल्पता का बािक है।' इसका भार्् यह है फक तनर्र््कशल्प तो अपना स्र्रूप ही है, जो फक त्रबना सिान के ही स्र्तः मसद्ि है। अब सिान द्र्ारा तनर्र््कशल्प होनेकी चेष्टिा करना, यही तनर्र््कशल्पता का बािक है।

'आत्म धचतांन का सकांल्प आत्म धचतांन में र्र््क्षेप है।' इसका भार्् यह है फक आत्मा से मभन्द्न कुछ भी न जानना, कुछ भी न देखना, कुछ भी भान न होना, यही आत्मधचतांन है। अब यहद आत्मधचतांन के मलए अलग सकांल्प फकया जाता है तो यही आत्मधचतांन में र्र््क्षेप है। क्योंफक 'म' ैं से यहद कुछ मभन्द्नता भासती है तो उसी समय आत्मधचतांन के मलए सकांल्प होता है।

7.अव्यक्त-व्यक्त र्त्र्ाद

(प्रेस् क्किल रे्द ाा्न्द्त

'तुझको अपनेअर्कार् पर इतना गर् शहै फक अर्कार् स्जसकी देन है उसकी तरि तू कभी नजर उठाकर भी नही ांदेखता।'

'अरे यार अर्कार् फकसी की भी देन हो, परन्द्तु तुझ चैतन्द्यघन अव्यक्त को अर्कार्-महांदर में तछपाने की स्र्क्त रखता हूँ। यह मेरी ही महहमा है फक तू सर् शका सर् शहोनेके बार्जूद आज भी तुझसे ममलने के मलए सारा ससाांर व्याकुल है। ब्रह्माहदक देर्ता भी चक्कर किा रहे हैं। मेरी ही बदौलत तो तेरा नाम पदानशर्ी ांहुआ। हालाफूँक पदा शिजी है। लेफकन कमों के कोप से, दुतुनया ूँिजी को सच मानती है। बस, यही अचम्भा है। र्धद से तेरे भार् की, अथ शसे तेरे रूप की, भार् से तेरे गुण की और लक्ष्य से तेरे कम शकी, तनरांतर म ैंतेरी रक्षा करता हूँ। इतनेपर भी तू मुझको णझड़फकया ूँदेता है।' भूताकार् बोला।

'होर् में आकर र्धद, अथ,श भार्, लक्ष्य इन चारों की व्याख्या कर। मुझको क्या पता फक तेरी र्जह से मेरा नाम पदानशर्ी हुआ है। व्यस्क्तत्र्हीन होनेके कारण म ैंगुप्त हूँ अथर्ा प्रगि हूँ इसका भी मुझको पता नही।ां ये सारे कलकां तेरे मसर पर, क्योंफक तू व्यस्क्तत्र् रखता है। व्यस्क्तत्र्ान के ही मुख पर कलकां-कामलमा हदखती है, व्यस्क्तत्र्हीन पर नही।ां क्योंफक व्यस्क्तत्र् ही प्रपचां का मूल कारण है। और व्यस्क्तत्र् का ही नाम माया, जगत्,्

र्रीर, इस्न्द्रयूाँ, चतुष्ट्यि अन्द्तःकरण, पचांप्राण, पचांकोष या सर्देशर्-काल-र्स्तु, तीन गुण ये सभी व्यस्क्तत्र् के अभार् में सर् शका अभार् है।' ऐसा धचदाकार् बोला।

'र्धद, अथ,श भार्, लक्ष्य इन चारों का स्र्रूप-भूताकार् र्धद है, प्रतीतत अथ शहै, अर्कार् भार् है, धचदाकार्! लक्ष्य है। ऐ पदानशर्ीांधचदाकार् मेरा नाम भूताकार् तेरे भार् पर पदाश है। भूताकार् नाम का अथ श प्रतीतत तेरे रूप पर पदा शहै। अर्कार् रूपी भार् तेरे गुण पर पदा शहै और मुझ भूताकार् का लक्ष्य रूप धचदाकार् तेरे कम शपर पदा शहै। ऐसा भूताकार् बोला।'

8. म ैं'म'ैं का र्ाद

यह कैसी आखूँ-ममचौली का खेल है फक सर् शका 'म'ैं होते ेहुए 'म'ैं की तलार् में दुतुनया ूँमारे-मारे फिर रही है। क्यों न फिरे। यहद र्ह 'म'ैं होकर 'म'ैं को ढूँढ़े तब तो र्ह प्राप्त करने में सरल और सुगम है। ढूँढ़नेर्ाला भी 'म'ैं। ढूँढ़ता स्जसेहै र्ह भी 'म'ैं, परन्द्तु ढूँढ़ ने र्ाला अपनेको कुछ का कुछ मानकर ढूँढ़ता है तो फिर 'म'ैं कैसे ेममलूाँ। जब दोनों 'म'ैं, तो ढूँढ़ने का र्र्कल्प क्यों? यार जब तू भी 'म'ैं और 'म'ैं भी 'म'ैं तो क्या दो 'म'ैं है? जी नहीां, 'म'ैं ही 'म'ैं हूूँ। जब 'म'ैं ही 'में'तो ढूँढ़ते फकसको हो? 'म'ैं को। यह र्र्कल्प क्यों? यह र्र्कल्प तब होता है जब 'म'ैं में अमुक नाम की पूँछ लग जाती है। 'म'ैं का ढूँढ़ना कब खतम होगा? इसकी आणखरी मस्ांजल कहा ूँहै? अमुक भार् का पररत्याग कर देना ही 'म'ैं की आणखरी मस्ांजल है। बस, ढूँढना खतम। ममल गया सनमा जल गया दैहरोहरम । जब तक म ैं अपने-आपको अमुक मानता रहता हूूँ तब तक ही ढूँढ़नेका र्र्कल्प रहता है। अमुक भार् गया। 'म'ैं ममल गया। पर बात एक और है। म,ैं अपने आप 'म'ैं को कुछ न मानू ूँतो फिर तुझ 'म'ैं को पूछेगा कौन? बोल सच बता, हदल पर हाथ रखकर ठीक- ठीक कह। अरे यार अमुक भार् तक ही तो मेरा महत्र् है। अमुक भार् गया फक तेरा बड़प्पन गया। महियामेि हो गया। ठीक है ऐ म ैं! ठीक है तेरा कहना। मगर मनैं तो तेरी परेर्ानी देखकर ऐसा कहा फक 'म'ैं को पाना चाहता है तो अमुक भार् को छोड़। अरे ये जो 'म'ैं कहता हूूँ, यह क्या र्र्ादग्रस्त है ऐसा कह र्ह 'म'ैं चुप हो गया। अब जो र्ेष रह गया र्ह 'म'ैं का 'म'ैं ही रह गया। इसके मसर्ाय कुछ नहीांबचा।

9.र्न्‍र्त-शर्न्‍र्तकश

'र्न्‍र्त शकैसा अनोखा जादूगूर है फक असीम र्न्‍र्तकश को अपने अभार्ाचांल में छुपा रखा है।' इस मुक्त सूि की व्याख्या।

सबसे पहहली बात तो यह है फक र्न्‍र्त शऔर र्न्‍र्तकश फकसको कहते ेहैं? र्न्‍र्त शउसको कहते ेहैं फक जो तीन काल में न हो, परन्द्तु भ्रम के कारण सत्य-सा हदखाई पड़े और स्जसमें हदखाई पड़ेउसको र्न्‍र्तकश कहते ेहैं। स्जस प्रकार रज्जु ुर्न्‍र्तकश है और सप शर्न्‍र्त शहै। तो र्न्‍र्त शरूप सप शहुआ आनोखा जादूगूर, क्योंफक स्जस काल में सप श भासता है, उस काल में रज्जु ुनहीांहदखाई पड़ती। यद्यर्प, सप शअभार् रूप है अथात्श ्न तो प्रकार् में है और न अांकार में ही, परन्द्तु र्न्‍र्तकश रज्जु ुको अपनेअभार्ाचांल यानी नहीांरूप गोद में छुपा रखा है। इसी प्रकार रज्जु ु सप शके दृष्ान्द्त सेआत्मा और जगत् ्के स्रूप को समझ लेना चाहहए। 'म'ैं आत्मा र्न्‍र्तकश हूूँ और सारा प्रपचां र्न्‍र्त शहै। र्ास्तर् में यह नाम रूपात्मक सारा चराचर प्रपचां तीन काल में नहीांहै, बध्ांयापिु के समान है। खरगोर् के सीगां, आकार् में नीमलमा, मृगतृष्णूा में जल, सीपी में में चादीं इत्याहद अभार् के समान यह ससाांर है, परन्द्तु 'म'ैं आत्मा के न जाननेपर अनाहद काल से सत्य सा भास रहा है। बस, यही र्न्‍र्त शका जादू ूहै जो फक 'म'ैं आत्मा आहद, मध्य, अन्द्त से रहहत हूूँ। फिर भी मुझ असीम आत्मा 'म'ैं को अभार् स्रूप जगत् ्प्रपचां ने अपनेअचांल यानी गोद में छुपा रखा है। स्जस प्रकार रज्जु ुही है, जो फक सपाकशार हदखाई पड़ती है। इसी प्रकार 'म'ैं ही हूूँ, जो ससाांर के रूप में भास रहा हूूँ। स्जस तरह रज्जु ुके अनुभर् हो जानेपर आकार-प्रकार र्ही रहता है, मसिश सप शभार् नष्हो जाता है। इसी तरह अपनेआपके दर्नश कर लेने पर प्रपचां का आकार- प्रकार सब कुछ ज्यों का त्यों ही

मुक्तोद्वार 76 रहता है, परन्द्तु जगत् ्दृस्ष्किोण नष्िहो जाता है। जैसा का तैसा 'म'ै ही 'म'ै रह जाता हूाँ। स्जस

प्रकार रज्जु देर् में

सप शनही ांहै, सप शदेर् में सप शहै। यहद, रज्जु देर् में सप शहै तो प्रकार् में भी सप शदेखना चाहहए। सप शतो अतांःकरण के

अदांर रहता है, रज्जु में नहीां, बस्ल्क ज्जु को ही सप शमानकर रज्जु से ही भय लगता है, क्योफक स्जसको सप शका

ज्ञान नही ांहै, उसको साक्षात् ्सप शसेकभी भी भय नहीांलगेगा, क्योंफक अथ शसे भय है, पदाथ शसे नही।ां अथ शर्न्र्त शहै,

पदाथ शर्न्र्तकश हैं। जैसे–े फकसी छोि बालक को फकसी भी हहसाांत्मक जीर् से भय क्यों नही ांलगता? इसमलए

फक

उस बालक के हृदय में अथहशीन पदाथ शरहता है। र्धदाहदक र्षय भासते ेजरूर हैं, परन्द्तु फकसी भी र्षय का अथ श

बालक के भीतर होता ही नही।ां इसी कारण से भय तथा मान- अपमान इत्याहद का भान कभी नहीांहोता। बालक

मस्त रहता है। जो कुछ उपाधि है, अथ शके ही लगाने में है। प्रदाथ शतो साक्षात् ्भगर्ान हैं। अथ शको ही र्ेदान्द्त में

अध्यास भी कहते ेहैं। अन्द्य में अन्द्य का भान होना, इसी का नाम अध्यास है। स्जस प्रकार रज्जु ुमें सप शका भान

होना, इसी का नाम सपध्शयास है। इसी प्रकार अपनेआत्म स्र्रूप आत्मा (म)ै में जगत् ्का अनाहदकाल से अज्ञान

के कारण भान हो रहा है। फकसी भी पदाथ शके अथ शको माया भी कहते ेहैं और दूसूरे र्धदों में इसी को जीर् सृसूष्िभी

कहते ेहैं। जीर् सृसूष्िमें ही जन्द्म-मरण, बिां-मोक्ष, पुण्य-पाप, िम-शअिम,श नरक-स्र्ग शइत्याहद की कल्पना की

जाती है। अब स्जज्ञासु को र्न्र्त शऔर र्न्र्तकश पर फिर र्ंचार करना चाहहए। जबफक, सारा प्रपचां ही 'म'ै आत्मा

का र्न्र्त शहै तो यह बिो हो जानेपर र्धि-तनषिे जगत् ्का भी अभार् हो जाता है और सारी समस्याए ाँहल हो

जाती हैं। स्र्रूप का ज्ञान होनेपर जगत् ्का बिा होता है, नार् नही।ां बिा और नार् में अतांर है। स्जस तरह

आभूषण को गला देना, आभूषण का नार् है और आभूषण न मानकर सोना जानना, आभूषण का बिा है। इसी

तरह इस भासमान जगत् ्को जगत् ्न मानकर अपना आप 'म'ै आत्मा जानना, यही जगत् ्का बिा है। स्जस

प्रकार रज्जुका र्न्र्त शसप शहै, इसी प्रकार 'म'ै का र्न्र्त शआकार् है। 'म'ै फकतना असीम, अपार, अनन्द्त,

अतनर्ाचशय, अमनस्क, अर्चल, अखण्ड, अजर, अमर, अजन्द्मा और प्रत्यक्ष हूाँ, परन्द्तु र्न्र्त शस्र्रूप अनोखे े

जादूगूर आकार् ने अपने अभार्ाचांल (गोद) में तछपा रखा है। जो स्जसका आकार होता है र्ैसेही आकार र्ाली

र्स्तु का उसमें भ्रम होता है। स्जस प्रकार रज्जु ुका िेढ़ा आकार होता है इसीमलए िेढ़ा आकार र्ाला जो सप शहै,

उसका रज्जु में ही भ्रम होता है। घि, पि आहद पदाथ शमें सप शका भ्रम कभी नहीांहोता। तदाकारता में ही भ्रम होता

है, अन्द्य आकार में नही।ां इसी तरह आत्मा आकार्र्त् ्कही जाती है अथात्श ्आकार् नहीां आकार् के समान जैसे–े

कहा जाय फक रज्जुनु सपर्शत् ्है अथात्श ्रज्जु सप शनहीां, बस्ल्क सप शके समान है। इसमलए, भगर्ान आत्मा चराचर

का 'म'ै आसमानी चादर से ढूाँका हुआ है। अतः, गुरु कृपा द्र्ारा आत्म र्ंचार से आकार् रूपी चादर को उठा दो,

िाड़ दो, आकार्, आकार् नहीां, बस्ल्क 'म'ै ही हूाँ, ऐसी ज्ञानास्ग्न से जला दो। 'म'ै चैतन्द्याकार् सागर में आकार्

र्न्र्त शको डुबा दो। महाकालेश्र्र् अल्मा भगर्ान मर्व के तीसरे नेि ज्ञान रूपी प्रचण्ड प्रलयास्ग्न से सनश्र्र

आत्मा भर्न जादूगूर अभार् रूप अनोखे ठग का सदा के मलए सहांार कर दो। बस, इसी में मानर् जीर्न की

साथकशता है।

10. आकार् समीक्षा

कार्! आकार् आकार् होता, तब तो आकार् आकार् ही होता। कार्! आकार् आकार् ही होता, तब आकार् को ततरोहहत कौन करता?

आकार् तीखे ेस्र में बोला- 'म ैंआकार् महान न होता तो समस्त चराचर को अर्कार् कौन देता।'

आकार् झाड़ी सेमुस्कराकर बोला 'ऐ हमनाम ! तू कार् चराचर का अर्कार् है तो तुझ आकार् का कौन

अर्कार् है? कार्! तू स्र्तः मसद्ध् है तब आकार् ही है। कार्! तू परतः मसद्ध् है तब तू है ही नही।ां'

आकार् दबे ेस्र में बोला- कार्! 'म ैंआकार् न होता तो तुझ आकार् को छुपने का अर्कार् कौन देता?
मुझ आकार् के अर्कार् महांदर में ही तो तुझे ेआखूँ-ममचौली खेलने ेकी जगह ममली है। 'म ैं कैसा अनोखा महांदर हूँ! र्ायु, अस्ग्न, जल, पृथ्र्ी फकतने सुदांर चारों स्तम्भ हैं! पचां महाभूत फकतना उचच र्ैकस्ल्पक मर्खर है! ऐसे अभार् रूप महांदर में तू आकार् का आकार्, यानी म ैंका म ैंही, जैसा का तैसा, ज्यों का त्यों ही प्रसररत है। अमुक रूप कैसा बेममसाल घूघँू हैै। ऐ परर्ानर्ीां, परदा उठा ! तेरे मलए दुतुनयाँूपरेर्ान है, हैरान है, बेजान है। तू सबका मसरताज है, अिताब है, बेहहसाब है। तेरा दीदार हो जानेपर सारा आलम गिलत का ख्याले ेख्र्ाब है। परदा िार् हो गया।

कहकहाकर बोला- 'अरे यार! परेर्ानी ही तो दुतुनयाँूकी तनर्ानी है और जो तनर्ानी है ई लगबेफानी है।'

बस, तमार्ा खतम, रहा सनम का सनम, जल गया दहरो हरमा फकिर गया मक्का, फकिर गया

बुतखाना? खुद की नजर से देखा तो मस्तों का मयखाना।

11. मन र्् में होता है

अपने'म'ै को कुछ भी न माननेपर ही मन र्् में होता है।

यू ूँूतो मन के मलए अनाहदकाल से नाना प्रकार के सिान, सिाक गण करते ेचले आ रहे हैं और र्ास्त्रों में भी अनेक महर्षयशों ने सिान बतलपाण करतेरमा मन को र्् में करने का कोई भी समिाान फकसी ने भी नही।ां है, लरखा है। मन के रोकने का सिान जरूर बतलाया गया है। र्् में करना। तथा स्स्थर हो जाना दोनों का मतलब एक ही होता है। स्जस प्रकार नदी को रोकने के मलए बिाां बनाया जाता है, न फक नदी को स्स्थर करने के मलए। नदी तो समुर में ही पहुुँचकर स्स्थर होती है। बिाां से नदी रुक तो जाती है, परन्द्तु बिाां के िूि जाने का भय बना रहता है और र्ही नदी जब सागर में पहुुँच जाती है तो अपनेआप ही स्स्थर हो जाती है। कोई भी जाकर समुर में नदी को ढुुए तो नदी का नामो-तनर्ान भी कही ांनहींममलता। इसी प्रकार मन एक नदी है, कल्पना स्जसकी िार है। अनेकों प्रकार के सिान मन रूपी नदी के रोकने के मलए बिाां हैं। सिानों से मन रूपी नदी रुक तो जाती है, परन्द्तु र्ासना रूपी जल थोड़ा न थोड़ा तनकलता ही रहता है और मन रूपी नदी जब आत्मानन्द्द सागर में पहुुँच जाती है तब मन की हस्ती पूणतशया ममि जाती है। क्योंफक, स्जस प्रकार नदी का घर समुर है, उसी प्रकार मन का घर अपना स्र्रूप आत्मा है। आकार् में पक्षी हदन भर उड़ता रहता है। जब तक अपनेघोंसलेमें पक्षी नहींां आ जाता तब तक उड़ना बदां नही ांहोता। इस प्रकार मन पक्षी है। सकांल्प-र्कल्प दोनों पखां हैं। र्षयाकार् मण्डल में अनाहदकाल से उड़ रहा है। जब तक अपने स्र्रूप आत्मारूपी घोंसलेमें नहींां आ जाता, तब तक मन को र्ाांतत नहींममलती।

अब र्षय यह है फक अपने 'म'ै को कुछ न माननेपर ही मन र्् में होता है। उदाहरण, यह है फक ससांार के हर एक काम में अथर्ा फकसी भी र्षय का अनुभर् करनेके मलए मन के मलए कुछ भी नहींांकरना पड़ता। अपनेआप ही त्रबना फकसी सिान के ही मन स्स्थर अथर्ा र्् में हो जाता है, क्योफक अनुभर् करने र्ाला फकसी भी

मुक्तोद्गार 79 र्षय के अनुभर् काल में अपने आप 'म' ै को कुछ भी नहीीं मानता। अपनेरुभार् में स्स्थत रहता है और मन कही ीं
आता-जाता है तो मन के आने-जानेमें फकसी प्रकार का हष-शर्ोक भी नहीींहोता, क्योंफक हष-शर्ोक जीर् को होता है। रुभार् रूप भगर्ान आत्मा 'म' ै को नही।ीं इसमलए, रुभार् में मन स्र्ाभार्क र् में होता है और परभार् अथात्श ् जीर्भार् में लाख कोमर्र् करनेपर भी क्षण मि के मलए भी मन काबू में नही ींहोता। स्जसकी जो चीज होती है र्ही ीं और उसी में र्ह स्स्थर होती है। स्जस प्रकार नदी समुर की है इसीमलए समुर में ही स्स्थर होती है। नदी पहाड़ जगांल में नही।ीं इसी प्रकार मन रुभार् रूप आत्मा 'म' ैका है, जीर् का नही।ीं इसमलए मन को स्स्थर अथर्ा र्र् में कोई करना चाहे तो अपने'म' ै को कुछ भी न माने। केर्ल 'म' ै ही 'म' ै जानना चाहहए। यही परम र्ातांत पद है। बस ! तनजानन्द में मस्त रहो।

12. तनजीर् जगत् ्का अमभर्ाप

आज के भारतीय छिा एर् ींछिााओींकी दर्ा देखकर कौन ऐसा अनुर्ामसत हृदय नहीींहोगा जो र्ोक के आर्त शमें न पड़ जाय। दोष फकसका है? अनुर्ासनहीनता का, पाश्चात्य सभ्यता का अथर्ा र्र्कराल कमलकाल का। आइए, अनुर्ासनहीनता के सबांिीं में सबसे प्रथम र्र्चार र्ाहिका का तनरीक्षण करों प्राथममक र्ाला से लेकर र्र्श्र्र्द्यालय तक के छिा-छिााओींमें अनुर्ासनहीनता का साम्राज्य व्यापक है। इसका कारण क्या है? गभीींरता से र्र्चार करने पर पता चला फक र्ही छिा-छिााए ूँअनुर्ामसत होंगे,े स्जन पर उनके सरांक्षकों का अनुर्ासन होगा। उदाहरण लीस्जए-जैसे ेस्जस मकान की नीर्ां कमजोर होती है र्ह मकान धचरायु नह होता, जो बालक या बामलका अपने सरांक्षक की आज्ञा का पालक होता है र्हीींभर्र्ष्य में आगे चलकर प्रत्येक क्षेि का मर्रोमणण बनता है। आज भौततक जगत् ्के प्रत्येक क्षेि जैसे ेफक नैततक, सामास्जक तथा िाममकश अनुर्ामसत न होनेके कारण प्रायः तनजीर् अथात् श ्चेतनारूून्द्य हो रहे हैं, दूसूरे र्ददों में मरणासन्द्न हैं। अनुर्ासन एक ऐसा सुन्द्दर, पर्र्ि और भर्र्ष्य उज्ज्र्ल करने र्ाला र्ासन है फक इसके अभार् में सभी र्ासन केर्ल पाखण्ड मि ह।ै अनुर्ासन की कक्षा माता-र्पता के र्ासन से प्रारांभ होती है। माता-र्पता का र्ासन प्राथममक र्ाला है। आचाय शका अनुर्ासन माध्यममक र्ाला है। र्ास्र्निुर्ासन हाईस्कूल है और ईश्र्रीय यानी सत्पुरुषों का अनुर्ासन र्र्श्र्र्द्यालय है। प्राथममक र्ाला का र्र्द्याथी कमजोर है तो उसका र्र्श्र्र्द्यालय तक पहुूँचना असभांर् है।
घर के माता- र्पता अथर्ा कोई भी सरांक्षक र्ग शमोहासस्क्त के कारण अपनेबालक या बामलका पर अनुर्ासन नही ीं रखते,े यद्यर्प रात-हदन देखते ेहैं फक मेरी सतांान उचछृांखल एर् ींअनैततक काय शमें रत रही है, परन्द्तु यह सब देखने े के बार्जूद इसमलए कुछ भी नहीींकह सकते फक कही ींभाग न जाय या आत्मघात न कर ले। पररणाम-स्र्रूप सतांान रुचछन्द्द और अनुर्ासनहीन हो जाती है। फिर भर्र्ष्य में सुिार होना सभांर् नहीींहै। ऐसी सतांान से क्या लाभ ? उसका जीर्न काल स्र्ान-पुचछ के सदृर् है। स्जस सतांान से सरांक्षक को समाज के सामनेलस्ज्जत होना पड़े, ऐसी सतांान सर्थशा त्याज्य है। श्री मानसकार जी कहते ेहैं फक -

जाय न्द्जयत जग सो महह भारू । जननी जीवन त्तवटप कुठारू ||

ऐसी सताांन को देखकर लज्जा भी लस्ज्जत होती है। अतः ग्राह्य नहीांहै, भले ही हृदय को सताांप हो। परन्द्तु, यह तनर्न्र्शाद मसद्धाांत है फक इसके दोषी उसके सरांक्षक र्ग शहैं। यहूाँपर दो बाते हैं-यह दोष या तो सरांक्षकों में भी होगा, तब उसे ेदेखकर सताांन त्रबगड़ेगी अथर्ा सरांक्षकों के द्र्ारा सताांन अनुर्ामसत नही ांहोगी, तब त्रबगड़ेगी। पररणाम स्र्रूप यह रोग उत्तरोत्तर सिांामक होता जा रहा है। भर्ष्य में माता-र्पता को मसर पकड़कर रोनेके अततररक्त और कुछ भी पल्ले ेनहीांपड़ता। दूसूरी बात यह है फक पाश्चात्य सभ्यता का प्रर्ेर् द्र्ार अनुर्ासनहीनता है, क्योंफक अनुर्ामसत हृदय में पाश्चात्य सभ्यता के मलए कोई स्थान नहीांहै। यू ूाँूतो इस सभ्यता का साम्राज्य समस्त र्श्र् में व्यापक होरहा है, परन्द्तु भारत के तो रग-रग में और मुख्यतः छाि एर् ां छाािओांमें पूण शअधिकार ही जमा मलया है। भर्ष्य में भारत से भले ही यह कोढ़ दूरू हो जाय, परन्द्तु आिुतुनक नर्तनममतश भारत का रोग र्ीघ्र तनरूतूत हो जाना सभांर्नही।ां अब प्रश्न यह होता है फक अनुर्ासनहीनता, उदण्डता, उचछृांखलता इत्याहद रोग के पैदा होने का कारण क्या होता है? समिाान-सहमर्क्षा और सहमर्क्षा का उपादान कारण है पाश्चात्य सभ्यता। र्द्याथी जीर्न एक महान पर्र्ि तपस्र्ी, ब्रह्मचय शजीर्न है और यह जीर्न ईश्र्र जगत् ्का प्रर्ेर् द्र्ार है। यह सयांमी जीर्न नैततक, सामास्जक तथा िाममकश क्षेिों में अधिकार प्राप्त करने का सुमेर है। मन, र्चन, कम शतीनों से भली-भातूाँत इसका पालन न होनेसे भर्ष्य अांिकारमय हो जाता है। इसमलए, मर्क्षा को अखण्ड ब्रह्मचय शतप में आरूढ़ होना तनताताां आर्श्यक है। मान लो फक यहद र्श्र्र्द्यालय की अताांतम डडग्री येन-केन प्रकारेण प्राप्त भी कर मलया तो इससे क्या लाभ ? कही ांसे पैसा कमाकर पेि ही तो भर सकता है। इसका क्या महत्र् है? पेि तो कूकर-सूकर भी फकसी तरह से भर ही लेते हैं? यहद मर्क्षाथी जीर्न में ही मानर्-जीर्न चररि का आदर्मशय तनमाणश न कर मलया तो फिर भर्ष्य में क्या करेगा, क्योफक चररि के नार् में सर् शका नार् है और चररि के आदर् शमें ही सर् शका आदर् शहै। प्रकृतत अथर्ा पुरुष, दूसूरे र्ंदों में छाि हो या छाािा, यहद चररिर्ान है तभी कुछ कर सकता है, कलफांकत से क्या हो सकता है? नीतत का, समाज का, िम शका एर् ांयुग का तनमातशा और कोई दूसूरा नहीांहै, अर्पतु चररिर्ान ही है। इसका साक्षी डीतहास है। जबफक, ईश्र्र को मसद्-अमसद् किरने र्ाले ेहम स्र्य ांहै तो ससाांर का कौन-सा काय शहै फक स्जसको हम न कर सकें। परन्द्तु हाूाँ, अनुर्ामसत एर् ांचररिर्ान हों तब। ब्रह्मचय शदो प्रकार का होता है, एक अताांरांग और दूसूरा बहहरांग। सतत् ्यानी तनरन्द्तर अखण्ड आत्मा ब्रह्म का धचताांन करना अन्द्तरांग ब्रह्मचय शहै और मन, र्चन, कम शसे तनर्र्कशार होकर भली- भातूाँत र्ीय शकी रक्षा करना बहहरांग ब्रह्मचय शहै, परन्द्तु अताांरांग के त्रबना बहहरांग की रक्षा नहीांऔर बहहरांग के त्रबना अताांरांग की रक्षा नही।ां यहद, मन र्कारर्ान होगा तो त्रबन्द्दुपुात फकसी न फकसी रूप में अर्श्य हो जायेगा, क्योंफक काम र्कार का नाम है मनमसज अथातश ्जो मन सेपैदा हो उसेमनमसज कहते ेहैं और आत्म धचताांन के त्रबना फकसी का मन कभी भी तनर्र्कशार हो जाय, आकार् में पुष्प के समान है। तात्पय शयह है फक र्षय धचताांन से मन तनर्र्षशय नहीांहोता, बस्ल्क तनर्र्षशय जो आत्मा अपना आप है और स्जसमें र्ंदाहदक र्षयों की गुजांाइर् ही नहीां, यातन जो र्ंदातीत अथर्ा र्षयातीत है, उसके ही धचताांन से मन तनर्र्कशार होता है और तनर्र्कशार क्या, मन की हस्ती ही ममि जाती है। मन की हस्ती ममि जाने पर सारे प्रपचां की हस्ती सदा के मलए पररसमाप्त हो जाती है। जब मन ही

मुक्तोद्गार 81 न रहा तो द्वैत कहा ूँऔर जब द्वैत नहीांतब स्त्री-पुरुष का भेदे कहा? ूँसारारां, यह है फक ससाांर के अदांर कोई भी बड़े
से बड़ा र्द्वान हो, सन्द्यांासी हो या तपस्त्री हो, हदगम्बर अथर्ा र्स्त्रीिारी हो, बलर्ान अथर्ा तनबलश हो, बाल, युर्ा, र्ृद्ि हो, पढ़ अथर्ा अपढ़ हो, स्त्री, पुरुष, छाि, छािा कोई भी हो जब तक अपने स्र्रूप आत्मा 'म'ैं को नही ां जाना, नहीांदेखा, अनुभर् नहीांकर मलया, तब तक आत्म धचतांन होगा ही नहीांऔर त्रबना आत्म धचतांन के मन तनर्र्कशार नहीांहोगा और त्रबना तनर्र्कशारता के अन्द्तरांग ब्रह्मचय शकी मसद्धि नहीां होगी। सारारां, यह है फक आत्मधचतांन मन से नहीांहोता। जहा ूँमन र्ाणी की गम नहीांउसका धचतांन मन से कैसे हो सकता है? स्जस प्रकार प्रकार् से ही प्रकार् देखा जाता है, प्रकार् सेही प्रकार् जाना जाता है, प्रकार् से ही प्रकार् का धचतांन होता है, अिांकार से नही।ां इसी तरह आत्मा सेआत्मा का ज्ञान होता है, आत्मा से ही आत्मा का दर्नश होता है, आत्मा से ही आत्मा का अनुभर् होता है, इसी प्रकार आत्मा से ही आत्मा का धचतांन होता है और आननेर्ाला, देखनेर्ाला, अनुभर् करने र्ाला और धचतांन करने र्ाला भी आत्मा ही है, दूसूरा कोई नही।ां यह व्याख्या अन्द्तरांग ब्रह्मचय शकी हुई।

अब बहहरांग ब्रह्मचय शर्ाहिका में र्चरण करें। अन्द्तरांग तथा बहहरांग दोनों का एक-दूसूरे से घतनष्ठ सबांाि है, अन्द्योन्द्याश्रय भार् है, यानी एक- दूसूरे के आधश्रत हैं। जब तक बहहरांग ब्रहाचय शपुष्ट्नि होगा तब तक अन्द्तरांग ब्रह्मचय श(आत्म धचतांन) का पालन कैसे ेहोगा। क्योंफक, र्षय भोगी, र्षय कीिाणु एर् ांर्षयानन्द्द कमलल में सना हुआ व्यस्क्त आत्म-धचतांन क्या कर सकता है। रात-हदन र्षय र्कारोत्पादक, देर्, काल, र्स्तु का सेर्न करता हुआ मानर् रूप में त्रबना सीगां-पूँछ के महा परुु व्यस्क्त को ब्रह्मचय शका नाम सुनते ही कालज्र्र आ घेरता है। उसका इतना तप कहा ूँफक ब्रह्मचय शस्र्रूप ब्रह्मलोक तक जा सके और थोड़ा बहुत जो कुछ रहा भी र्ह परस्र्र तनयोजन प्रचण्डाहठन में भस्मसात् ्हो गया है। इसी पर श्री मानसकार का एक दोहा स्मरण आता है फक -

धरा न काहू धीर, सबके मन मनमसज हरे ।
जेहहं ांराखा रघुबीर, ते उबरे यह काल मंह ||

इसमलए छाि तथा छािाओ ांके तनयम क्या हैं? ध्यान दीस्जए। सबसे प्रथम सहमर्क्षा से दूरू रहना। पढ़ाई भले ही बदां कर दो, परन्द्तु र्यस्क हो जाने पर एक कक्षा में एक साथ बैठेकर अध्ययन करना मर्क्षाथी जीर्न खतरे से खाली नहीांहै।

उपन्द्यास तथा फिल्मी गीतों की फकताबें पढ़ना या फिल्मी गीत गाना बन्द्द करो। मसनेमा जगत् ्के अदांर मर्क्षणकाल में स्र्प्न में भी प्रर्ेर् मत करो। मर्क्षाथी को उधचत है फक अपनेसरांक्षक अथर्ा आचाय शके अनुर्ासन में रहे। अभक्ष्य पदाथ शजैसे-मासां, महदरा, अण्डा इत्याहद, अधिक मािा में कडुर्ा, तीखा, चरपरा, गरम मसाला, खट्टा तथा बासी इत्याहद पदाथ शका सेर्न र्द्याथी को कभी न करना चाहहए और जो भी देर्, काल, र्स्तु, छाि एर् ांछािा के मलए र्कारोत्पादक हों, र्े सर्थशा त्याज्य हैं। उपरोक्त तनयमों का पालन जो मर्क्षाथी करेगा र्ह

समाज का आदर् शबनेगा, कुलभूषण होगा, राष्ट्र का कणिशार होगा और भर्ष्य में ईश्ररीय र्ानि (सार्भशौम मसद्ान्ि्त) का तनभीक प्रचारक बनेगा।
नोट-र्यस्क हो जाने पर जो भी छाि और छाािए ूँमर्क्षण काल में ही अपनेदेह, इस्न्द्रय तथा मन पर पूण श अधिकार न पा सके तो उन्हें उधचत है फक लज्जा, सकोाच और भय का पररत्याग कर अपने सरांक्षक से कह देना चाहहए फक हमें र्ीघ्र गृहस्थ बना दीस्जये। मर्क्षाथी यहद ऐसा न करेगा तो उसके पतन का भय अर्श्यम्भार्ी है।

13. मर्क्षा मानर्ता का स्रोत है

मानर् र्हीाँहै स्जसमें मानर्ता हो, नहीांतो र्ास्तर् में दानर् है। मानर्ता यही है जो नीतत के अनुकूल हो। नीतत र्ही है, स्जसका लोक परलोक में र्माल हो। लोक र्ही ांहै, स्जसमें समस्त प्राणी र्ग शरहते ेहैं। परलोक र्ही ांहै जहा ूँ पहुँचकर नर-नारायण हो जाता है, दूसूरे र्ंदों में स्जसेसतां जगत् ्कहते ेहैं। मानर्ता कोई बाजारू सौदा नहीांहै। अनेक जन्मों के पूर्ास्शजतश पुण्योदय होनेपर ही मानर्ता प्राप्त होती है। र्द्या दो प्रकार की होती है। एक अपरा, दूसूरी परा। अपरा र्द्या मानर् बनाती है और परा र्द्या मानर्ता प्राप्त कराती है। मर्ु कक्षा से लेकेर ससाांर की स्जतनी भी र्द्याय ेहैं ये सभी अपरा हैं, अपरा र्द्या के ही अदांर र्ेद-र्ास्भ्ि भी आ जाते ेहैं और परा र्द्या उसे ेकहते ेहैं (स्जसे ेअध्यात्म र्द्या भी कहते ेहैं) स्जसके द्वारा व्यापक तत्र् जो सारे चराचर का 'म'ै है, स्जसे े जानकर नर से नारायण हो जाता है, जीर् बांि-मोक्ष से मुक्त होकर आर्ागमन के चि से छुिकारा पा जाता है। र्ास्तर् में मर्क्षा र्ही है, स्जसको प्राप्त करके जीर् अध्र्िाम जगत् ्में प्रर्ेर् पा सके और यहद प्राइमरी से आहद र्श्र्-र्द्यालय की भी मान्यता प्राप्त करके अनैततक जगत् ्के गत शकी ओर जाता है, चरररर्ान, सदाचारी एर् ां समाज का आदर् शनहीांबनता, स्र्य ांका कल्याण तथा समाज और राष्ट्र के उत्थान करने में समथ शनहीांहोता तो र्ह जीर्न मनुष्य जीर्न नही ांहै, र्स्तुतः पर्ु जीर्न है। ऐसे ेछाि-छाािा को लज्जा भी देखकर लस्ज्जत होती है। उसका जीर्न स्र्ान-पुचछ के सदृर् तनरथकश है। माता के युर्ार्स्था रूपी र्ृक्ष को कािनेके मलए मानो कुठार रूप है। आिुतनक जगत् ्में प्रकृतत र् पुरुष, दोनों समाज के अतांगतश र्द्वानों की कमी नहीां है, फकन्द्तु आदर् शचरररर्ान प्रायः नही ांके समान हैं। यद्यर्प, ससाांर में फकसी भाषा का पठन- पाठन मानर् जीर्न को मानर् बनाता है, त्रबगाड़ता नही।ां परन्द्तु, सगां दोि के कारण र्तमशान काल की मर्क्षा कलफांकत हो रही है। अतः, सगां दोष से बचने ेकी
तनतातां आर्श्यकता है, तभी मर्क्षा मानर्ता का स्रोत है, अन्यथा व्यथ शहै।

14. समाज का आदर् शबनो

र्द्याथी जीर्न मानर्ता का स्रोत है। उन्द्नतत और अर्नतत, सुसगां एर्ां कुसगां का पररणाम है। सदाचारता इस महान तपस्ी जीर्न की रक्षा का परम सिान है। यह देर् दुलुभश मानर्-जीर्न ही अध्यात्म प्रदेर् का प्रमुख द्वार है। गुरुजनों द्वारा अनुर्ामसत रहकर जीर्न को सिल बनाना प्रत्येक का कतव्शय है। महान पुरुषों की कृपा का आकाक्षंी होना तनभयशता का प्रतीक है। सत्पुरुषों की अनुकूलता र्ुद्ि ह्रिदय की पररचायक है। भगर्ान र्श्र्ात्मा को बाहर भीतर से सर्ि्श देखना समस्त र्कारों पर ऐततहामसक र्जय है। मन से सदैर् सतकश रहना मानर्ता का र्ि् है। यह मन काग रूप है। हमेर्ा र्षय रूपी र्ष्ठा पर ही चोंच मारता है। यह मन उलूक के समान है। इसे ेअज्ञान की अिंिरी रात ही प्यारी लगती है। ज्ञान के प्रकार् में तो मन की हस्ती ही ममि जाती है। यह मन स्ान के सदृर् है। स्जस प्रकार कुत्ता कही ांसे सूखी हड्डी लाकर एकान्द्त में बैठकर बड़ेचार् से चबाता है, हालाफूँक चबानेसे मसूड़ा तछल जानेके कारण स्र्य ांका ही रक्त हड्डी में लगता है और उसे ेबार-बार चिाता हुआ आनन्द्द मानता है, परन्द्तु मूख शस्ान यह नहींजानता फक यह रक्त तो मुझसे ही तनकला है। इसी प्रकार इस मन को र्षयों द्वारा जो क्षणणक आनन्द्द प्राप्त होता है, उस र्षय- जन्द्य सुख को र्षयों से प्राप्त हुआ सुख मानता है। यह हरामखोर अज्ञानी मन ऐसा अनुभर् नहींकरता फक आनन्द्द का भण्डार तो मेरे ही अदांर है अथर्ा आनन्द्द सागर तो 'म'ैं स्र्य ांही हूँ। अनाहदकाल सेनीतत-अनीतत का र्चार न करके ससांारी र्षयों में भिक रहा है। इसमलए ऐसेीखेबाज मन के मलए र्ीतराग सन्द्तों की कृपा ही अकुांर् है। यह मानर्-जीर्न अनन्द्त जन्द्मों के भाग्य एर् ांभगर्ान के प्रसाद से ममला है, अतः अनैततक काय शपर दृष्ष्पात मानर्ता पर कलकां तथा भगर्ान के र्िान का उल्लघांन है।

15. सन्द्तों की अनोखी दृस्ष्

भगर्ान को त्रबना जानेअनोखी दृस्ष् निहींआती।

शंका- भगर्ान को जानना क्या है? **समाधान** - भगर्ान को मनैं जाना है, भगर्ान को म ैंजानूगांा या भगर्ान को म ैंजानता हूँ। ऐसा यहद कोई कहता है
तो यह समझना फक उसने अभी तक भगर्ान को नहीां जाना। क्योंफक भगर्ान अपने आप से मभन्द्न कब था, स्जसको मनैंजाना और मभन्द्न कब है, स्जसेम ैंजानूगांा अथर्ा दूसूरा कौन स्जसको म ैंजानता हूँ। र्ास्तर् में ये तीनों र्ेकल्प हैं। न मनैंजाना है, न जाजूगांा, न जानता हूँ। यहद अपनेआप 'म'ैं आत्मा से भगर्ान मभन्द्न है तो र्ह भगर्ान नहीांऔर यहद अमभन्द्न है तो जाना है, जानूगांा या जानता हूँ, ये तीनों र्ेकल्प नही।ां ये तीनों र्ेकल्प 'इदां र्ाचय' में होते ेहैं, 'अहां र्ाचय' में नही।ां इदां र्ाचय जगत् ्है, अहां र्ाचय भगर्ान है। इदां र्ाचय अमुक होता है, अहां र्ाचय स्जस पर अमुक का र्ेकल्प होता है, र्ह अहां 'म'ैं नाम से प्रमसद् भगर्ान होता है। **शंका-** हदखना हदखता है या

देखना हदखता है? यहद हदखता है तो देखे ेत्रबना हदखेगा ही क्या और देखना हदखता है
तो हदखे त्रबना देखना कहाँ और जब तक फकसी भी देर्, काल, र्स्तु, का र्ेकल्प न हो तब तक हदखने–देखने ेका र्ेकल्प कहा।ूँ

समाधान - सबसे प्रथम अमुक का र्ेकल्प होता है, बाद में हदखने- देखनेका, फकन्द्तु देखने ेका जो र्ेकल्प है उसमें ही हदखनेदेखने ेदोनों का र्ेकल्प तनहहत है।
शंका- हदखने–देखने ेका जो र्ेकल्प है, र्ह तनर्ेकशल्प है या सर्ेकल्प है? यहद तनर्ेकशल्प है तो र्ेकल्प, र्ेकल्प नहीांऔर यहद सर्ेकल्प है तो सर्ेकल्प का कोई अस्स्तत्र् नही।ां

समाधान- अरे भाई, र्ंकल्प और र्ंकल्पक का जो र्ंकल्प है, यहभी तो र्ंकल्प ही है और र्ंकल्प-र्ंकल्पक दोनों र्ंकल्प स्जस देर् में,सूय शमें अोंकार के समान है, उसे ेभगर्ान कहते ेहैंऔर भगर्ान कहते ेही जाना है, जानूगाां या जानता हूँ, देखा है, देखूगाां, देखता हूँ अथर्ा हदखना- देखना इत्याहद ऐसे उड़ जाते ेहैं, स्जनका नामो तनर्ान नही।ां जो र्ेष है र्ह अपना आप 'म' ैं हूँ।

शंका- आत्म धचतांन का क्या लक्षण है?

समाधान- स्जस धचतांन में धचतांन-अधचतांन दोनों र्ंकल्पों का अभार् हो, धचतांन-अधचतांन दोनों में जो धचतांन हो, धचतांन का जो धचतांन, अधचतांन का जो अधचतांन अथर्ा धचतांन-अधचतांन दोनों भार्ों के अभार् का जो भार्, र्ही आत्म धचतांन है। आत्म धचतांन में देर्, काल, र्स्तु की अपेक्षा नहीांहै। त्रबना धचतांन के ही जो सर्कशाल में स्र्ाभार्र्क धचतांन हो रहा है, र्ही आत्म धचतांन है। ऐसा आत्म धचतांन सारे चराचर का स्र्तः मसद् है? यह आत्म धचतांन है, यह अनात्म धचतांन है-जब तक इस प्रकार का र्ंकल्प रूप धचतांन है, तब तक आत्म धचतांन नहीांहै, बस्ल्क र्ंकल्प का ही धचतांन है।

गकि हो जा रुहानी दररया में, डुबा दे न्द्जस्त्मानी खुदी को ।
ाड़ि आसमानी चादर, बैठै जा लामहदूवी तख्त पर ॥

सन्द्तों की दृस्ष् है, आत्मा की सृसूष् है, उपतनषदों की र्ूसूष् है, असली मुक्ता र्षा् है ।।

'मर्' !!

|| श्री अचयुताष्किम् ् ||

अच्युतं केशवं ंरामनारायणंकृष्णदामोदरं वासुदेवं हररम् ्।
श्रीधरं माधवंगोत्तपकावल्लभं ंजानकीनायकं रामचन्द्र भिजे े||1||

अच्युतं केशवं ंसत्यभामाधवं ंमाधवंश्रीधरं राधधका राधधतम् ्।
इन्द्न्दरा मन्द्न्दरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दजं संदंधे||2||

त्तवष्णवे ेन्द्जष्णवे ेशंणखने ेचफिणेरुन्द्क्मणीराधगणे जानकी जानये।
वल्लवीवल्लभा याधचतियात्मनेकं सत्तवध्वंमसनेवंमंशने ेते नमः ||३||

कृष्ण गोत्तवन्द हे राम नारायण श्रीपते ेवासुदेवान्द्जत श्रीतनथे।
अच्युतानन्त हे माधवाधिोज द्वारकानायक िौपदीरिक ||4||

रािसोमभतः सीतया शोमभतो दण्डकारण्यभू पुण्यता कारणः।
लक्ष्मणेनान्द्न्वतो वानरैः सेते्तवतोऽगस्त्य संपून्द्जतो राघवः पातु माम्||5||

धेनुकाररष्ट कातनष्ट कृ दूद्वेत्तषहा के मशहा कंस हृद्धंमशकावादकः।
पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो बाल गोपालकः पातु मां ंसवदिा ||6||

त्तवद्युदुबो तवत्प्रस्तुरिद्धाससं प्रावृड्म्भोदवत्प्रोल्लसद्वभद्यहम् ्।।
वन्यया मालया शोमभतोरःस्त्थलं ंलोहहतांधधद्वयं वाररजिांभजे े||7||

कुंधचतैः कुन्तलेन्द्जमानाननं रत्नमौमलंलंसत्कुण्डलंगण्डयोः।
हारके यूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं फकङ्फकणी मंजुलं श्यामलं तं भजे े|8||

अच्युतस्त्याष्टकं यः पठेहदष्टवं ंप्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्त्पृहम् ्।
वृतृततः सुन्दरं कतृ ित्तवश्वम्भरस्त्तस्त्य वश्यो हररजायिते ेसत्वरम् ्॥9॥

16. सन्द्तों की अनोखी दुतुनया ूँ

दुतुनया ूँदुतुनया ूँढूँढ़ती है, भगर्ान सतां ढूँढ़ते हैं।

दुतुनया ूँदुतुनया ूँके पीछे चलती है, भगर्ान सन्द्त के पीछे चलते ेहैं।

दुतुनया ूँके मलए दुतुनयाूँ प्रमाण है, भगर्ान के मलए सन्द्त प्रमाण हैं।

दुतुनया ूँके मलए दुतुनयाूँ ई्भर् है, सन्द्त के मलए भगर्ान ही ई्भर् हैं।

दुतुनया ूँसम्मान का स्र्ागत करती है, सन्द्त अपमान का स्र्ागत करते ेहैं।

दुतुनया ूँफकसी से राग और फकसी सेद्रेष करती है, सन्द्त राग से न राग, द्रेष से न द्रेष करते ेहैं।

दुतुनया ूँमृतूयु से डरती है, सन्द्त मृतूयु का आमलगांन करते ेहैं।

दुतुनया ूँअपनेव्यस्क्तत्र् की रक्षा करती है, सन्द्त अपना व्यस्क्तत्र् खोकर मसद्ान्द्ित की रक्षा करते ेहैं।

दुतुनया ूँअपर्ाद का प्रचार करती है, सन्द्त मसद्ान्द्ित का प्रचार करते ेहैं। जो सार्भशौम अथाश्ा् ्तनर्रृशो हो, उसे ेमसद्ान्द्ित कहते ेहैं।

दुतुनया ूँआत्म ई्श्र्ास खोकर आपर्त्त का नार् करती है, सन्द्त आत्म ई्श्र्ास की रक्षा के मलए आपर्त्त का आदर करते ेहैं।

दुतुनया ूँयुग का तनमातशा फकसी और को मानती है, सन्द्त नर्युग का तनमाणश स्र्यां ही करते ेहैं।

दुतुनया ूँजीर् से ब्रह्म बनती है, सन्द्त ब्रह्म को भी भ्रम ही समझते ेहैं। दुतुनयाूँ हदखने ेर्ाले को कुछ मानकर देखती है, सन्द्त हदखने र्ाले को देखने ेर्ाला ही जानकर देखते ेहैं।

दुतुनया ूँअज्ञान का नार् करती है, सन्द्त ज्ञान, अज्ञान दोनों का नार् करते ेहैं।

दुतुनया ़ूँबिां से मुक्त होती है, सन्द्त बिां, मोक्ष दोनों से मुक्त होते ेहैं।

दुतुनया ़ूँमन को रोकती है, सन्द्त मन के रोकने को रोकते हैं। दुतुनया ़ूँमसद्धियों को मसद् किरती है, सन्द्त मसद् को मसद् किरते ेहैं।

दुतुनया ़ूँसमाधि में समाधिस्थ होती है, सन्द्त समाधि की समाधि अथात्श ्परम-समाधि में समाधिस्थ होते े हैं।

दुतुनया ़ूँदुतुनया ़ूँदेती है, सन्द्त भगर्ान देते ेहैं।

दुतुनया ़ूँ िनर्ान बनती है, सन्द्त हदर्ामलये बनते ेहैं।

दुतुनया ़ूँप्रपचां सेसन्द्ांयास लेती है, सन्द्त सन्द्ांयास से सन्द्ांयास लेते ेहैं।

दुतुनया ़ूँभगर्ान से िम,श अथ,श काम, मोक्ष मागांती है, सन्द्त भगर्ान से भगर्ान को भी नहींमागांते।

कुछ भी मत बनो, भगर्ान भी मत बनो, जैसे ेहो रै्सेही रहो, बनना ही है तो सन्द्त बनो।

17. सन्द्तों की अनोखी अनुभूतत

जो माना जाता है, र्ह जगत् ्है और जो जाना जाता है, र्ह 'म'ैं हूँ। अथर्ा जो माना जाता है, र्ह र्न्र्त शहै और जो जाना जाता है, र्ह र्न्र्तकश है।

शंका-सबसे प्रथम फकसने माना, फकसमें माना और फकसको माना?

समाधान- 'म'ैं आत्मा अपनेआपको मन माना। फकसमें माना? 'म'ैं में फकसको माना? 'म'ैं को ही। क्योंफक, जो सबसे प्रथम था, अब है, आगे ेभी रहेगा, र्ही ांसे यह खेल स्रुरू हुआ। जो खेल के पहले ेथा, र्ही इस खेल का णखलाड़ी है और खेल का जो देखने ेर्ाला है, र्ह 'म'ैं ही हूँ। 'म'ैंने माना मन को। मन ने माना 'म'ैंको। जो 'म'ैं ने माना, उसका ही नाम मन अथर्ा माया है और मन ने जो माना, उसका ही नाम ससांार है। मन (माया) का आिार 'म'ैं हूँ और ससांार का आिार मन है, स्जसके अभार् में उसके मानेहुए का अभार् हो जाय, र्ही ससांार है। मानने र्ाले मन से ससांार मभन्द्न नहीांहै। सुषुस्प्त अर्स्था में मन के अभार् हो जानेपर मन के मानेहुए ससांार का भी अभार् हो जाता है। फकन्द्तु, मन के भार्-अभार् दोनों भार् में 'म'ैं आत्मा ज्यों का त्यों ही रहता हूँ। इसमलए 'म'ैं में ही सारा खेल है। यह खेल कब तक, जब तक णखलाड़ी 'म'ैं आत्मा को नहीांजाना।

आश्चय शतो यह है फक इन्द्रजाली के इन्द्रजाल का स्जस प्रकार फ़ोिो नहीांउतारा जा सकता, उसी प्रकार मन के माने हुए का भी धचि नहीांउतर सकता। क्योंफक, यह अिल मसद्िान्द्त है फक माननेर्ाले का माना हुआ मानने र्ाले के ही अदांर होता है और मानने र्ाले से अमभन्द्न होता है। र्श्र् में ऐसा कोई भी र्ैज्ञातनक नहीांजो अमुक का फ़ोिो ले सके। अमुक मन रधचत है, मन आत्म रधचत है। इसमलए न 'म'ैं का धचि, न 'म'ैं रधचत मन का धचि। जब मन का ही धचि नहीां, तब मन के माने हुए प्रपचां का ही धचि कहा?ूँ ससांार मन के अदांर है। मन 'म'ैं आत्मा के अदांर है। यहद 'म'ैं आत्मा का धचि होता तब तो मन का भी धचि होता और जब मन का धचि होता तो मन के माने हुए र्कल्प रूप इन्द्रजाल जगत् ्का भी धचि जरूर होता। 'म'ैंतो समस्त प्रपचां का धचि खीचांता है। 'म'ैं आत्मा का धचि कौन ले सकता है? 'म ैंसर् शका अनुभर् करता हूँ। यही समस्त प्रपचां का धचि खीचांना है।

शंका- मन पदाथ शमें जाता है फक र्कल्प में जाता है? यहद पदाथ शमें आता है तब तो र्ह पदाथ श'म'ैं ही हूँ, और यहद र्कल्प में जाता है तो र्कल्प का कोई अस्स्तत्र् ही नहीां, क्योफक श्रर्ण तो हो, फकन्द्तु र्स्तु का अभार् हो, उसे ेर्कल्प कहते ेहैं।

समाधान- अरे भाई, मन न कहीांआता है और न कही ांजाता है। 'म'ैं आत्मा कल्पतरु हूँ। मेरी ही छिछाया में बैठकर मुझमें ही और मुझको ही, मन कुछ न कुछ मानता रहता है। सारार्ां यह है फक फकसी भी र्षय का

र्ंकल्प करना, यही मन का जाना समझो और र्ंकल्प न करना, यही मन का आना समझो। भला, जल को छोड़कर तरांग कही ांजा सकती है। इसी प्रकार 'म'ै आत्मा को छोड़कर मन कहा ूँजायगा। मुझ आत्मा से अलग होते े ही मन ही खत्म हो जाता है। तब आना-जाना फकसका ? सब इन्द्रजाल है। इन्द्रजाली को भली-भातूँत जान लेनेपर इन्द्रजाली के इन्द्रजाल में मन कभी मोहहत नहींहोता। इसी प्रकार इन्द्रजाली अपनेआप आत्मा को भली- भातूँत जान लेने पर र्ंकल्प रूप इन्द्रजाल के चक्कर में कभी भी नहींपड़ सकता। इसमलए, मन न कही ांआता है और न कही ांजाता है और न मन के आने-जानेकी कोई जगह है। हाूँ, यहद अपने आपको जीर् मानतेहो, तब मन के रोकने का प्रयास करो और यहद अपने आपको आत्मा जानते ेहो तब तो सरकारी साड़ां के समान तनद्शिन्द्, तनभयश, स्तिां तथा मस्त रहो। जैसेहो र्ैसेही रहो। न कुछ हदखता है, न कुछ देखना है। 'म'ै जैसा हूँ, र्ैसा ही हूँ। म ैजो हूँ, सोई हूँ। 'म'ै सर्िश हूँ- यह देर्ाची र्धद है। था, हूँ, रहूँगा, यह कालर्ाची र्धद है। 'म'ै सर् शहूँ-यह र्स्तुर्ाची र्धद है। देर्, काल, र्स्तु ये तीनों 'म'ै आत्मा मर् में बधांया पिु के समान हैं। यह कैसा अनोखा खेल, यह कैसा र्ंर्त-श र्ंर्तकश का मेल, यह कैसा अज्ञातनयों का जेल, यह कैसी बहढ़या मन की नकेल।

सतीं की अनुभूतत है, मुक्त की र्ंभूतत है, माननेकी रीतत है, ज्ञान से प्रतीतत है।

'मर्' !!

18. अध्यात्म और र्ंज्ञान

1. आत्म रहस्य को अध्यात्म कहते ेहैं और प्रकृतत रहस्य का नाम र्ंज्ञान है।

2. अध्यात्म का िल है आतांररक सुख और र्ज्ञान का िल है बाह्य सुखा

3. भौततक जगत् ्में र्ज्ञान का साम्राज्य होता है और अन्द्तिजगशत् ्में अध्यात्म का।

4. भौततक र्ज्ञान के अनुभर् का नाम िेक्नोलॉजी है और अध्यात्म के अनुभर् का नाम समाधि है।

5. र्ज्ञान जगत् ्की जिज्ञासा बुद्धि है और अध्यात्म जगत् ्की स्जज्ञासा।

6. बाह्य सुख अधचर है और आतांररक सुख तनत्य अथर्ा धचर।

7. र्ैज्ञातनक जगत् ्की यािा का अांत कभी नहीांहोता, क्योंफक प्रकृतत में नानात्र् भार् है और अध्यात्म जगत् ्के प्रर्ास की चरम सीमा आत्मानुभूतत है।

8. अध्यात्म प्रत्येक क्षेि में मानर्-जीर्न का उत्थान करता है और र्ज्ञान र्ैज्ञातनक को प्रकृतत के अद्भुत रहस्य को जानने के मलए खोज की ओर अग्रसर करता है।

9. बाह्य जगत् ्तृष्णा का स्रोत है और अन्द्तजगशत् ्तृष्णा का काल है।

10. अन्द्तजगशत् ्पोस्िकाड शहै और बाह्य जगत् ्मर्ललिाा है।

11. प्रकृतत का रहस्य रूप र्ज्ञान, स्जसका मूलािार अध्यात्म (आत्मा) का चमत्कार है। अध्यात्म, र्ज्ञान का यही समन्द्र्य है।

12. बुद्धि की बुद्धि, चैतन्द्य घनभूत, सर् शका अस्स्तत्र्, 'म' ैं सज्ञाां से अमभव्यक्त आत्मा के त्रबना र्ैज्ञातनक जगत् ् में प्रर्ास के मलए बुद्धि को प्रेरणा कौन देगा। अध्यात्म, र्ज्ञान का यही समन्द्र्य है।

13. बाह्य जगत् ्में पयहशिका बुद्धि को र्ज्ञान कहते ेहैं और अन्द्तजगशत में पयहशिका बुद्धि को अध्यात्म कहते े हैं। अध्यात्म, र्ज्ञान का यही समन्द्र्य है।

19. र्श्र् िम श

आज ससांार में िमों की भरमार है। बड़े-बड़ेर्द्रानों ने समस्त र्श्र् के िमों की गणना दो हजार नौ सौ तननानबे ेबतायी है और जो भी गणना में आते ेहैं, रे् सभी एक-दूसूरे के प्रततद्द्ंर्ी हैं अथर्ा राग-द्रेषी है और सभी िमार्शलम्बी अपने-अपने िम शको अनाहद बतलाते हैं। आज भी हदन पर हदन िम शबनते ेही जा रहे हैं। ससांार की सर्सशिाारण जनता भ्रम में पड़ जाती है फक हम कौन से िम शको मानें और फकस िम शका त्याग करें। यही कारण है फक पढ़े-मलखे लोग खास करके पाश्चात्य र्चारिरा के व्यस्क्त, िम शके नाम पर नाक मसकोड़ते ेऔर मि शचचाशके स्थल से उठकर चलेजाते ेहैं। रे् क्यों न नाक मसकोड़ेंया क्यों न उठकर चलेजाए,ूँ क्योंफक िम शके ही नाम पर तो अखण्ड भारत के दो िुकड़े हो गये। िम शके नाम पर लाखों का बमलदान हुआ और रक्त की नहदया ूँ बही।ां आज भी िमान्द्शिता एर् ंर्चार रून्यता के कारण र्तमशान युग के भर्ष्य का इततहास उज्ज्र्ल नहीं, बस्ल्क अिंकारमय है। उस िम शका दूरू से ही अमभर्ादन है, जो िम शआपस में लड़ना-झगड़ना अथर्ा एक-दूसूरे से मभन्द्नता की मर्क्षा देता हो। ऐसा िम शमानर् िम शया र्श्र् िम शकहलानेका अधिकारी नहींहै। बस्ल्क, ऐसेिम शको परु िम शकह देनेमें कोई अत्युस्क्त नहींहै। क्योंफक, परुओ ंका हृदय भी तो मभन्द्नता-अमभन्द्नता, िमिाशम,श ग्राह्य-त्याज्य का र्चार करनेमें मूढ़ होता है। र्तमशान काल में स्जतने भी िाममकश स्थल हैंहहन्दुओ ुंके हों, मुसलमानों के हों, ईसाइयों, यहूूहदयों, जैतैनयों, अथर्ा बौद्िों आहद के, सभी जगह राग-द्रेष का साम्राज्य है। कारण यह है फक िम शका क्या स्र्रूप है? मानर् जगत् ्की क्या िारणा है? मानर् अथर्ा र्श्र् का समस्त प्राणी र्ग शक्या चाहता है? कहा ूँसे और कहा ूँको यािा हो रही है? स्जतने भी यािी है सबकी आणखरी मस्ंजल अलग-अलग है या एक ही है? ... ऐसेर्चार जगत् ्में कोई लाना ही नहीं चाहता। नहदयाूँयहद आपस में लड़ती हैं तो यह कहना पड़ेगा फक नहदयों ने अपने आपका व्यस्क्तत्र् नहींजाना। ससांार में हम सब की गगांा से लेकेर और एक गदंी नाली तक, एक ही आणखरी मस्ंजल है, एक ही घर हैं। इन सब बातों पर र्चार न करने को ही अज्ञान कहा जायेगा। नहदयों के बहनेका माग शभले ही मभन्द्न-मभन्द्न हो, परन्द्तुनहदयों का र्श्राम स्थल तो एक ही है। नहदयों के नाम रूप भले ही मभङ्ग- मभन्द्न हों, फकन्द्तु जल रूप से तो एक ही हैं। नहदयाूँर्स्तुतः यहद एक-दूसूर मसम एक है तब तो नहदयों की यािा भी पृथक-पृथक स्थानों के मलए होनी साहहए। परन्द्तु नहदयों का फकतना र्र्ाल भर्न है और भर्न फकतना बाहहर ततल है। भर्न का द्र्ार फकतना गौरर्ाली है फक द्र्ार पर पहुूँचते ही मह गगांा हो अथर्ा फकसी के घर की गदंी नाली, सभी अपनी-अपनी हस्ती ममिाकर (म ैंअमुक हूूँ), इस अहांकार रूपी मसर को द्र्ार पर ही रखकर, भीतर भर्न में प्रर्ेर् कर पाती हैं।

आइए, र्चार र्ाहिका में सबसे ेप्रथम िम शके अथ शपर र्चार करें। िम शका अथ शहोता है िारणा। फकसी भी हृदय की िारणा को ही िम शकहते ेहैं। जब तक यह हृदय के अदांर है तब तक उसका नाम िम शहै और र्ही जब फिया रूप में आ जाता है, तब उसी का नाम कम शहो जाता है। अब र्चार करना है फक समस्त र्श्र् की िारणा एक है अथर्ा अनेक। फकसी स्थान पर दस- पाचूँ व्यस्क्त बैठैकर र्नोद के मलए आपस में कहने-सुनने लगतेहैं फक भाई ससांार में पैदा हुए हैं इसमलए अपनेको क्या करना चाहहए। यानी हम मनुष्य हैं तो मनुष्य को क्या करना चाहहए दूसूरे र्ब्दों में मनुष्य का क्या कत्तर्व्शय है? यहद उस गोष्ठी में कोई सन्द्ंयासी बैठा है तो र्ह कहेगा फक प्रपचां का त्याग कर भगर्ान का भजन करना चाहहए। यहद कोई र्षयी बैठा है तब र्ह अपना राग अलापेगा। यहद िम श या ईश्र्र से र्रक्त पुरुष है तब र्ह अपनेही स्र्र में बोलेगा और यह मौमलक प्रश्न है फक मनुष्य का क्या कतर्व्शय

है? इसी प्रकार इसका उत्तर भी सार्भशौम ही होना चाहहए। पूर्ोक्त प्रश्न का समिाान यह है फक मानर् अनाहदकाल से स्जस र्स्तु को ढूँढ़ रहा है, उसे ेप्राप्त कर लेना ही मनुष्य का कत्तव्शय है। क्या ढूँढ़ रहा है? आनन्द। कोई भी मनुष्य अथर्ा प्राणी की प्रर्ृस्त्त जब फकसी काय शमें होती है तो आनन्द को ही लक्ष्य मानकर होती है। ससांार का कोई भी देर्, काल, र्स्तु प्रर्य नहीं है। यहद प्रर्य है तो आनन्द स्जस सुख को एक व्यस्क्त बड़े से बड़ेपाप कम शमें ढूँढ़ता है, उसी को दूसरा व्यस्क्त प्रपचां को ठोकर मार पर्तश की कन्दरा का सेर्न करता है। नीतत-अनीतत, पुण्य-पाप, मि-शअिम,श राग-द्रेष, तनन्दा-स्तुतत अथर्ा यू ूँूकहो फक स्जसे ेब्रह्मचारी ब्रह्मचय शमें, गृहस्थी स्त्री-पुिाहदक में, र्ानप्रस्थी र्ानप्रस्थ में, सन्द्यांासी सन्द्यांास में, र्ैरागी र्ैराग्य में, चोर चोरी में, मद्यपी मद्यपान में, दुराचारी-दुराचार में सदाचारी सदाचार में, आस्स्तक ईश्र्र में तथा नास्स्तक अनीश्र्र में, तनदांक हहदांा में स्तुततर्ाला स्तुतत में, रागी राज में, द्रेषी देष में। तात्पय शयह है फक फकसी भी र्ृषय में जब कभी मन जाता है तो आनन्द की ही आर्ा से जता है। क्योंफक, आनन्द ही प्राणी मिा की खुराक है। इसके त्रबना एक क्षण भी कोई जीर्ृत नही ांरह सकता। आनन्द के र्ृयोग में मानर् आत्मघात कर लेता है। आनन्द यािा का आरांभ अनाहद है और जब िाक आणखरी मसांजल लक्ष्य स्थान पर नहींपहुूँच जाता, तब तक यािा समाप्त नहींहोती। समस्ा र्ृश्र् एक ही प्रर्ाह में प्रर्ाहहत है और एक ही स्थान को जीर् जगत् ्का प्रस्थान है। अब प्रश्न होता है फक आनन्द तो क्षण-प्रततक्षण र्धदाहदक र्ृषयों में ममलता ही रहता है तो यािा समाप्त हो जानी चाहहए, परन्द्तु ऐसा नही।ां स्जस आनन्द को ससांार का प्राणीमिा चाहता है या स्जसके मलए सब कुछ न्द्योछार्र कर रहा है, र्ह आनन्द कुछ और ही है। क्या ससांार का कोई भी प्राणी ऐसा चाहता है फक हम 23 घिांा 59 ममनि आनन्द भोगें और एक ममनि दु:ख ही सही, बस्ल्क सबकी यही इचछा होती है फक हमें तो ऐसा सुख ममले ेफक सर् शदु:ख दूरू हो जाए, हमेर्ा हम सुखी रहें। सारार्ां यह है फक हर एक प्राणी कौन-सा सुख चाहता है, क्षणणक अथर्ा तनत्य? िाब मुक्त कांठ से यही उत्तर ममलेगा फक तनत्य। इससे यह मसद्ध हुआ फक र्ृश्र् का समस्ा प्राणी र्ग शर्ृषय जन्द्य सुख अथर्ा र्ृषयानन्द की खोज में नहींहै, बस्ल्क ममत्यानन्द, दूसरे र्धदों में आनन्द सागर की ओर बहार् है। स्जस प्रकार से समस्त नहदयों का प्रर्ाह जगांल पहाड़ की तरि नहीं, सागर की तरष है। अब र्ृचार यह करना है फक सारे र्ृश्र् की िारणा एक है तनत्य सुख की प्रास्प्त और िारणा का ही नाम िम शहै। तब र्ृश्र् का िम शएक हुआ और यह िम शअकृत्रिम, व्यापक, अद्र्ृतीय, अखण्ड, अर्ृचल, अनाहद, सत्य, सनातन, भारतीय इसी को मानर् िम शभी कहते ेहैं। इस िम शपर जब कभी आपत्त्त आती है, तभी भगर्ान अजन्द्मा का जन्द्म हुआ करता है।

यदा यदा हह धमस्त्यि ग्लातनभर्वतत भारत ।

अभयुत्थानमधमस्त्यि तदात्मानंसृजाम्यहम् ्॥

(गीता 4/7)

अब प्रश्न होता है फक र्ह कौन-सा िम शहै, स्जस िम शकी रक्षा के तनममत भगर्ान का अर्तार होता है अथर्ा स्जसके प्रसार के मलए भगर्द् र्ृभूततया ूँभूमण्डल पर अर्तररत होती रहती हैं। ग्लातन का अथ शनार् नही ां होता, बस्ल्क छुप जाना या दब जाना है। स्जस प्रकार ननि और सूय शके बीच में घनघोर बादल के आ जाने से सूय श नहींहदखाई देता तो इसका मतलब यह नहींफक सूय शका नार् हो गया। बस, इसी का नाम ग्लातन है। प्रचण्ड र्ायु

के चलने से बादल जब हि जाते ेहैं, तब सूय शतो सभी नि र्ालों को प्रत्यक्ष ही है। इसी प्रकार श्रुतत-स्मृतृत के र्रुद्ि मसद्ान्द्ित पाखण्ड बादल करके यह भगर्द् ि म शजब कभी लोप-सा हो जाता है यानी छुप जाता है, उस समय पाखण्ड रूपी बादलों को हिानेअथर्ा तछन्द्न-मभन्द्न करनेके मलए जन-जन के हृदय में इस व्यापक र्ेश्र् ि म शका प्रसार करने के मलए नारायण रूप महान पुरुष आते ेरहते ेहैं। भगर्ान के अर्तार चार प्रकार के होते ेहैं-तनत्य, नैममर्त्तक, प्रादुभार्श और आतुरा तनत्य अर्तार रूप सतां महात्मागण है- नैममर्त्तक अर्तार रूप भगर्ान राम-कृष्णाहदक हैंऔर आतुर स्र्रूप भगर्ान गजेन्द्रोद्ारिक हरर हैं, तीन काय शकरने के मलए नैममर्त्तक अर्तार होता है।

परररराणाय साधूनां त्तवनाशाय च दुषुकृताम् ्।
धमसंस्स्थापनाथायि संभवामम युगे युगे ।।

(गीता 4/8)

भक्तों का कल्याण, दुषु्ों का र्ेनार् और ि म शकी स्थापना। स्थापना का अथ शबनाना नही ांहोता, बस्ल्क स्थार्पत करना होता है। स्जस ि म शको स्थार्पत करना है र्ह ि म शपहले ेसे है। हाँ, उस पर से आर्रण हिा देना है। भगर्ान का तनत्य अर्तार है, जो सतां रूप में होता है र्ह केर्ल एक ही काय शकरता है-जन कल्याण अथर्ा जीर् मिा के अन्द्तःस्थल में भगर्ान का र्ेानि स्र्रूप सत्य सनातन ि म शकी स्थापना यानी प्रचार। भगर्ान के र्ेानि का स्र्रूप -

ईशावास्त्यममद᳸᳸ सवमि्।।

(ईर्ा.उ. 1)

अथर्ा

योगांपश्यतत सवरि सवं ंच मतय पश्यतत ।
तस्त्याहं न प्रणश्यामम स च मे न प्रणश्यतत ॥
नारायणेवेद᳸᳸सवं।ं आत्मैवेद्᳸᳸सवं ं। अहमेवेद᳸᳸सवं ं॥

भगर्ान का यही अिल र्ेानि है। इसी र्ेानि द्ारा र्ेश्र् के हृदय का परररतनश तनःसदोंह है और हृदय का परररतनश युग का परररतनश कहा जाता है। युग बदलने के मलए इसके अतततररक्त और दूसूरा कोई भी उपाय नही ां है। हृर्य अथर्ा युग के परररतनश में सभी का परररतनश है। हृदय (देर्), युग (काल), र्स्तु (व्यस्क्त), इन तीनों में जो व्यापक सच सदैर् अक्षुण र्र्ाजमान है, देर्, काल, र्स्तु तीनों के रग-रग में जो ओत-प्रोत है, स्जसमें देर्, काल, र्स्तु है, स्जस करके देर्, काल, र्स्तु हैं अथर्ा जो स्र्य ांदेर्, काल, र्स्तु है तथा जो स्जसमें सर् शहै, स्जससे े सर् शहै, स्जस करके सर् शहै और जो स्र्य ांसर् शहै ऐसेभगर्ान सर्ात्शमा का जो र्ेानि यानी 'र्ासुदेर्ेद् सर्'ं यही समस्त चराचर र्ेश्र् का ि म शहै। अरे भाई! जो स्जसकी स्र्ाभार्र्क िारणा होती है र्ही उसका र्ास्तर्र्क ि म श होता है। प्रत्येक हृदय की िारणा, जबफक तनत्यानन्द्द है यानी दूसूरे र्ेदों में प्रत्येक का ि म शआत्म ि म शहै, तब

बाह्य िमों से र्श्र् के धचत्त का समिाान कैसे ेहो सकता है? नहदयों के धचत्त का समिाान तो सागर पाकर ही होगा। इसी प्रकार जीर् मिा को तो सतुांस्ष्ट् आनन्द्द सागर भगर्ान आत्मा को प्राप्त करने पर ही होगी।

र्तमशान काल की दर्ा पर जरा र्ेचार करो। दर्ा ज्यों-ज्यों फकया मज शबढ़ता ही गया।

सररता जल-जल तनधध महूं जाई । होइ अचल न्द्जमम न्द्जव हरर पाई ।।

(रा.मा.फक.का.ां)

आज जमाने में अनैततक कायों का नार् करने के मलए रोज ब रोज नये-नये कानून बनते ेरहते ेहैं, परन्द्तु यह कोई नहीांर्ेचार करता फक ये कानून फकस पर लागूहोंगे,े रीर पर अथर्ा हृदय परा अरे भाई! जो चीज जहा ूँ पर पैदा होती है, हूाँका ही र्ासकीय र्ाँनि उस पर लागू होता है। अब र्ेचार यह करना है फक स्जतनी भी नैततक-अनैततक भार्नाएूँपैदैा होती हैं, र्े सभी रीर सेहोती हैं अथर्ा हृदय से। समिाान यह है फक हृदय से ही पैदा होती हैं, न फक रीर से। तब यह तनयम है फक रीर स्जस देर् का होगा, उसी देर् का राजकीय र्ाँनि रीर पर लागू होता है और हृदय फकसी देर् अथर्ा लोक-लोकान्द्तर का नहीांहै। इसमलए हृदय पर फकसी भी देर् की गहनमशेंकि का कानून नहीांलागू हो सकता, तो भला बताओ फक बाह्य जगत् ्के र्ासकीय र्ाँनि से हृदय का सिुार या पररर्तनश कैसे ेहो सकता है? अब प्रश्न होता है फक फिर यह हृदय फकस देर् में पैदैा हुआ अथर्ा फकस देर् का है और कौन-सा र्ासक है या इस हृदय पर फकसका र्ासन है? समिाान यह है फक हृदय का र्ासक आत्मा है-आत्मा ही इस पर र्ासन करती है।

ईश्वरः सव िभूतानां हृद्देशेऽजुनि ततष्ठतत ।
भ्रामयन् ्सव िभूतातन यन्त्रारूढातन मायया ॥

(गीता 18/61)

इसमलए, हृदय नारायण व्यापक तत्र् जो सारे चराचर का अस्स्तत्र् है और 'म'ैं नाम से प्रत्येक काल, प्रत्येक अर्स्था में प्रसुुहित, प्रसुुररत अथर्ा अमभव्यक्त हो रहा है, स्जस भगर्ान आत्मा गह्नमशेंकि का र्ाँनि हृदय पर लागूहोता है, उसी व्यापक सरकार का ही कानून हृदय का पररर्तनश कर सकता है, अन्द्यथा स्जतने भी र्ाँनि हैं, हृदय के बदलने में कोई भी समथ शनहीांहै। इसमलए, जमाने को बदलनेके मलए र्श्र् के कोने- कोनेमें अध्यास्त्मक िास्न्द्त की आर्श्यकता है। नये युग का तनमाणश करने के मलए कोई आसमान से नहीांआता, तुम स्र्य ांतनमातशा हो, परन्द्तु भगर्ान के र्ाँनि पर अिल र्श्र्ास करो। मन-महांदर के अदांर र्ाँनि की स्थापना करो और इसी र्ैितनक तनयम के साचूेंमें अपनेमानर्-जीर्न को ढालो। यही मानर्ता है, यही मानर् िम,श भगर्द् मि शएर् ांर्श्र् िम शहै। इस िम शका ससाांर में कोई भी र्ेर्ीि नहीांहै, क्योफक तनत्यानन्द्द तो सभी चाहते हैं और दूसूरे र्ब्दों में इसी को सनातन िम शभी कहते ेहैं। यह िम शर्श्र् के समस्त िमों का र्पता है। आज जगत् ्में स्जतने भी िम शहैं उन िमों के प्रर्तकश तथा िमों की जन्द्म कुण्डली है, परन्द्तु मा ूँका कोई सपूत मैदैान में आकर बतला सकता है फक सनातन िम शका आचाय शकौन हुआ और सनातन िम शफकस सन्–्सर्ांत् ्में पैदैा हुआ। इसमलए

मुक्तोद्वार 96 यह ि म शअनाहद है, था और रहेगा। यद्यर्प, इस ि म शपर बड़ी से बड़ी आपर्त्तयाूँ आयीीं, फकन्द्तु

कालातांर में उनका

नामो तनर्ा ांभी न रहा और यह ि म शअक्षुणु ही रहा। सनातन ि म शको छोड़कर कोई भी यहद श्रुतत-स्मृतृत के र्ुर्द्,

मि शका आश्रय लेता है तो र्ह सनातन ि म शके स्र्रूप को नहीींजानता। स्जस प्रकार सम्रिा के अगांरक्षक होते ेहैं,

तद्र्त् ्भगर्ान सनातन ि म शसम्रिा के र्ेद से आहद हनुमान चालीसा तक अ ांग रक्षक हैं। यह ि म शमहान है और इस ि म शकी महत्ता यह है फक यह ि म शअन्द्य ि मों का खण्डन नहीींकरता, फकसी की आलोचना नहीींकरता, क्योफक

सबका मूल कारण है, सबका आिार है। पिु भले ही र्पता का र्र्रोि करे, परन्द्तु र्पता तो पिु का हहत ही चाहता है।

सनातन ि म शनारायण स्र्रूप है और नारायण भगर्ान सारे चराचर की आत्मा हैं, फिर र्र्रोि फकससे? े र्र्रोि तो

दो में होता है, जब एक ही आत्म तत्र् बाहर-भीतर पररपूण शहै, तब तनदांा-स्तुतत फकसकी, राग-द्रेष फकससे, े तू-तू और म–ैंम ैंकहा? ूँ ऐसे र्र्ाद् ि म शका त्रबना अर्लम्बन फकये फकसी भी क्षेि का अमभर्ाप अथर्ा गमलत कोढ़ कभी ममि नही ांसकता। आसमान के मसतारे भले ही जमीन पर आ जाए, ूँ र्ेश्र् हृदय का सिुार होना तनतातां असभांर् है।

सत्य, सनातन, अजन्द्मा का जन्द्म, अजन्द्मा ि म शकी ही रक्षा के तनममत्त होता है और इसी ि म शके प्रसार के मलए सन्द्त रूप भगर्द् र्र्भूततयों का आर्र्भार्श समय-समय पर होता रहता है।

यतोऽभयुदय तनश्र्ेयस मसद्धधः स धमःि॥

(साख्ांय दर्नश, भगर्ान कर्पल)

स्जससे ेकल्याण का उदय हो अथर्ा स्जससे ेकल्याण पद की मसद्धि हो, र्ही ि म शहै।

20. जगत् ्का स्र्रूप

आखूँ बन्द्द करना है तो हदखनेर्ाले से बन्द्द मत करो। क्योफक जो कुछ भी बाहर-भीतर हदख रहा है, सबको अपना स्र्रूप भगर्ान आत्मा जानो, बस्ल्क यह अमुक है ऐसा मत मानो। इस प्रकार मानना ही ससांार है और अमुक ही र्र्कल्प है। र्र्कल्प का अथ शहोता है कल्पना, यानी कहने सुनने में आये, परन्द्तु यहद तनश्चय करने चलो तो उस पदाथ शकी गिां भी नहीीं, इसमलए र्र्कल्प से आखूँ बन्द्द करो। स्जतने र्र्कार अथर्ा उपाधिया ूँहै र्र्कल्प जगत् ्में ही हैं। आत्म जगत् ्में तो म ैंही म ैंजानो। इस अध्यात्म जीर्न को हमेर्ा जीर्र्त रखने ेके मलए र्ैकस्ल्पक जगत् ्की उपेक्षा करो। सबसे प्रथम अपनेआप 'म'ैं आत्मा में जीर् या मन का र्र्कल्प होता है। बाद में पचां महाभूत, दसों इस्न्द्रयाूँ, र्धदाहदक र्र्षय, चतुष्यि अन्द्तःकरण, पचां प्राण, पचां कोषाहदक, जायत, स्र्प्न, सुषुस्प्त तीनों अर्स्थाय, ें भूत, भर्र्ष्यत्, ्र्तमशान तीनों काल, सारार्ां यह है फक जहा ूँतक मन र्ाणी का र्र्षय है र्ह सभी र्र्कल्प अथर्ा अमुक जगत् ्है। जो हदखता है र्ह ईश्र्र जगत् ्है और यह अमुक है ऐसा जो र्र्कल्प है,

ई जीर् जगत् ्है। ईश्र्र जगत् ्एक होता है, जीर् जगत् ्अनेक होते ेहैं। स्र्रूप ज्ञान होने पर रै्कस्ल्पक (जीर्) जगत् ्का नार् होता है, ईश्र्र जगत् ्का नही। ां ईश्र्र जगत् ्अहां रूप है, जीर् जगत् ्इदां रूप है।

हदखने ेर्ाले को मन पहले ेकुछ मान लेता है, फिर मानेहुए र्ष्य में जाता है और अपने ही आनदां को उस र्ष्य का आनदां मानकर उसमें आसक्त होता है। स्जस समय अपनेआप म ैंको 'म'ैं ही जानता है, उसी समय मन सहहत सारा प्रपचां र्लीन हो जाता है। फिर पता भी नहीं लगता फक कहा ूँगया। मन अथर्ा जीर् ये दो पदाथ शनही ां हैं, एक ही पहलूके दो नाम हैं-जीर् या मन। सुषुस्प्त अर्स्था में मन के अभार् में जीर् भार् का ही अभार् हो जाता है यानी म ैंजीर् हूँ, यह भार् नहींरहता, परन्दतु 'म'ैं आत्मा रहता हूँ। यहद म ैंन रहूँ तो आनन्द का अनुभर् कौन करेगा? भगर्ान र्श्र्ात्मा 'म'ैं का कैसा खेल है? जब भगर्ान को खेलने ेकी इचछा होती है, तब अपनेआपको कुछ भी मान लेता है और जब खेल त्रबगाड़ना चाहता है तब म ैंको म ैंही जानता है, उस समय सारे खेल-तमार्े ेका अत्यतांप्रलय हो जाता है। आहा, मस्ती का दररया उमड़ रहा है। मार दो छलागां, बहा दो साढ़े तीन हाथ की हस्ती को। म ैंअमुक हूँ, इस अहांकार रूपी, नमक की पुतली को गला दो आनन्द सागर में। जीर्-ब्रह्म, भक्त-भगर्ान, गुरु-मर्ष्य इत्याहद भार्ों को अभार् रूपी गठरी में बाूँकर िेंक दो चैतन्द्याकार् अपार समुर में। दररया सीमा तोड़ कर बह रहा है। दोनों आखूँों रूपी फकनारों के बाहर बहनेलग गया है। इस दररया के बहने का रास्ता हद-बेहद से परे है। इस दररया की आणखरी मस्ांजल कोई नहींहै। इस दररया की न र्ुरुआत है, न आणखर है, लबालब है। क्या कहना, क्या सुनना, क्या मलखना, क्या पढ़ना? होर् का पता नहीं, बेहोर्ी से नाता नहीं, खुदी की खुदकुर्ी है, चारों तरि खामोर्ी है।

21. पेंमसल की लकीर

बिो त्रबना ध्यान, िारणा आहद पेंमसल की लकीर है अथात्श ्जब तक अपनेस्र्रूप आत्मा 'म'ैं का बिो नहींहो जाता तब तक सािक जो कुछ भी सािन करता है, ई सब पेंमसल की लकीर के समान है। स्जस प्रकार पेंमसल से लकीर खीचांकर और फिर उसको रबर से ममिा सकते ेहो, इसी प्रकार फकसी के बताने से अथर्ा मन को मानने पर जो कुछ भी ध्यान–िारणा इत्याहद सािन फकयेजाते ेहैं, र्े सभी कस्ल्पत हैं, क्योफक मन का माना हुआ हमेर्ा ही बनता-त्रबगड़ता रहता है। फकसी के कहनेसे कोई सािन कर रहा है, फकसी दूसूरे ने कुछ और बता हदया तो पहले ेको छोड़कर दूसूरा सािन करने लग गया। फिर उसको छोड़कर तीसरा, तीसरे को छोड़कर चौथा। बस, इसी में सारा जीर्न समाप्त हो जाता है। धचत्त को र्ास्न्दत नहींममलती और जहा ूँतक सािन का प्रश्न है, र्े सभी मन से मानकर और मन के ही मलए फकये जाते ेहैं, परन्दतुजो 'म'ैं आत्मा है, यह मानने की चीज नहींहै, यह जानने की चीज है। मानना मन का िम शहै, जानना 'म'ैं आत्मा का िम शहै और सारा प्रपचां ही माना हुआ है। जो पदाथ श माना जाता है ई कभी सत्य नहींहोता। ई असत्य, ममथ्या, कस्ल्पत तथा बनने त्रबगड़ने र्ाला होता है और जो

'म ' ैं आत्मा है, उसको मानो तब है, न मानो तब है। जानो या न जानो, देखो या न देखो, ध्यान करो या न करो, ारिणा करो या न करो, समाधि में बैठैो या न बैठैो। 'म ' ैं तो हर हालत में, हर काल में, हर अर्स्था में सर्शि सर् शका सर् शभरपूर है, इसमलए अपने 'म ' ैं में सुख तथा र्ास्न्द्त है, बाकी सभी में ोखा है।

भगर्ान को कुछ मानने से 'म ' ैं का कुछ नहीं त्रबगड़ता, 'म ' ैं को कुछ भी मानने से भगर्ान कलफांकत हो जाता है।

श ्भगर्ान को कुछ माननेसे 'म ' ैं का इसमलए कुछ नही ंत्रबगड़ता, क्योंफक म ैंही भगर्ान को मानता हूाँ। म ैंही तो भगर्ान को मसद् किरता हूाँ। भगर्ान से 'म ' ैंको तनकाल लो तो भगर्ान की भी हस्ती ममि जायेगी। इसमलए भगर्ान को कुछ माननेसे'म ' ैं का क्या बनना-त्रबगड़ना है, क्योफक 'म ' ैं तो सर् शका सर् शहै।

22. श्रीमद्भागर्तगीतासार

1. अजुनश तुम व्यथ शधचताां क्यों करते ेहो? तुम्हें कौन मार सकता है? आत्मा न जन्मती है, न मरती है।

2. जो कुछ हुआ सो अचछा हुआ, जो कुछ होगा सो अचछा होगा, जो कुछ हो रहा है अचछा हो रहा है। भूतकाल का पश्चाताप न करो, भर्ष्य की धचताां न करो, र्तमशान चल ही रहा है।

3. तुम्हारा क्या गया जो रोते हो। तुम क्या लाये थे, जो खो हदया। तुमने क्या पैदा फकया, जो नार् हो गया। जो लाये हो और जो मलया, यहीं से मलया। जो हदया, यहींपर हदया। जो मलया, इसी से मलया। जो हदया इसी को हदया। खाली हाथ आये और खाली हाथ चले। जो आज तुम्हारा है, कल फकसी और का था, परसों फकसी और का होगा। स्जसको तुम अपना समझकर मग्न होते ेहो, यही प्रसन्द्नता तुम्हारे दुःख का कारण है।

4. पररर्तनश ससांार का प्राण है। स्जसेतुम मृतूयु समझतेहो यही तो जीर्न है। एक क्षण में तुम करोड़ों के स्ा्मी बनते ेहो और क्षण में कांगाल हो जाते ेहो। म–ैंमेरा, छिोा-बड़ा, अपना पराया, हदल से हिा दो-र्ंचार से ममिा दो फिर सब तुम्हारे हैं, तुम सबके हो।

5. यह देह न तुम्हारी है, न तुम इसके हो। देह-आग, पानी, हर्ा, ममट्ीी से बनी है, इसी में ममल जायेगी। फिर भी तुम्हारा अस्स्तत्र् स्स्थर रहेगा, र्ंचार करो तुम कौन हो?

6. तुम अपनेआपको उसे ेसमर्पतश करो, यही सबसे उत्तम सहारा है। जो इस सहारे को जानता है र्ह र्ोक, मोह, भय, धचतांा से मुक्त रहता है।

23. र्ेदोन्द्त क्या करता है?

प्रथम सूर-

र्ेदान्द्त हमें अमर बनना मसखाता है। मरना नहीां, र्ह मृतूयु को मार डालता है।

द्त्तवतीय सूर-

र्ेदान्द्त उत्साह और उल्लास बढ़ाता है तथा सत्कम शमें प्रर्ूतूत करता है। र्ह आलस्य, र्ंषाद और बुरे कमों की प्रर्ूरूत्त को नष्ट् किर डालता है।

तृतीय सूर-

रे्दान्द्त र्ईश्र् के सब प्राणणयों में एक अमर-आत्मा के दर्नश कराकर सबमें प्रेम कराता है। र्ह घृणा,

द्वे्ष, बैर, परायेपन को ममिा देता है।

चतुथ ि सूर-

रे्दान्द्त सारे ससाार को सत्, धचत् और आनन्द्द बनाकर हदखा देता है, र्ह जड़ता को सर्थशा नष्ट् कर डालता है।

पंचम सूर-

रे्दान्द्त कड़र्ी और दु्ःखभरी दुतुनया ूँको परम-मिुर, अतुल सुख से पूण शबना देता है। र्ह क्तिता और कष्ट् की जड़ ही काि डालता है।

षष्टम सूर-

रे्दान्द्त जीर्न को सयांमी, सतोषी, तनरहांकारी और कत्तव्र्शयर्ील बनाता है। र्ह र्षय-र्ासना, अतृसूप्त, अहांकार और अकमण्शयता को आमूल ममिा देता है।

सप्तम सूर-

रे्दान्द्त हमारे जीर्न को आत्मा या परमात्मा के परायण बना देता है। र्ह हमारी काम, िोि और लोभ परायणता को समूल नष्ट् कर देता है।

अष्टम सूर-

रे्दान्द्त ज्ञान की अप्रततम, अपूर् शज्योतत जलाकर सर्थ्श तनमूलश एक रस अनन्द्त प्रकार् िैला देता है। र्ह अज्ञान के अंिकार को सदा के मलए ममिा देता है।

नवम सूर-

रे्दान्द्त ऊँच-नीच के लौफकक व्यर्हार के रहते ेहुए भी, आतांररक ऊँच-नीच के भार् को सर्थशा ममिा देता है। र्ह उपाधि के कस्ल्पत भ्रम भेद सेहिाकर, हमें सर्थ्श तनत्य अभेद स्र्रूप सम ब्रह्म के दर्नश करा देता है।

दशम सूर-

रे्दान्द्त मोह के सब पदों को िाड़कर, जीर् की अपूण शसिा को पूण शकर, उसे ेपरमात्मा बना देता है। फिर उसके मलए कुछ भी करना र्ेष नहीींरहता।

24. र्द्या कल्पलता है

त्तवद्या क्या करती है -

माता के समान रक्षा करती है। र्पता के समान हहत चाहती है। पत्नी के समान सुख-दु:ख में साथ देती है और देर्-र्देर् में कीतत शका प्रसार करती है।

त्तवद्या क्या करती है -

देर्-काल के अनुसार िम,श अथ,श काम एर् ांमोक्ष चारों पदाथ शको प्राप्त कराती है।

त्तवद्या क्या करती है -

अनैततक माग शमें जाते ेहुए व्यस्क्त को लौाकर, नैततक पथ पर अग्रसर करती है।

त्तवद्या क्या करती है -

समाज के पतन रूप अमभर्ाप को दूरू कर, उत्थान रूप र्दान को प्रदान करती है।

त्तवद्या क्या करती है -

मूढ़ को बुद्धिमान, तनरक्षर को र्ईद्वान, चररिहीन को चररिऱ्ान, असत्यऱ्ादी को सत्यऱ्ान, उद्दण्ड को नम्रऱ्ील, अनुऱ्ासनहीन को अनुऱ्ामसत तथा कलकीं को तनष्कलकां बनाती है।

त्तवद्या क्या करती है -

आलस्य और प्रमाद को दूरू कर, नैष्कमण्शयता को ममिाकर, धचत्त में उत्साह पैदाकर, कत्तव्शयऱ्ील बनाती है।

त्तवद्या क्या करती है -

मन, र्चन, कम शतीनों से एकत्र् भार् का उपदेर् करती है। यानी जो मन में हो, र्ही मुख से कहो और जो कहो उसे ेकरके हदखाओ।

त्तवद्या क्या करती है -

मानर् जीर्न रूप पहेली को सुलझाने में भली-भातूँत सहायक बनती है।

त्तवद्या क्या करती है -

फकांकतव्शयर्मूढ़ व्यस्क्त को आलोक में पहुूँचाकर, अध्यात्म पथ का पधथक बनाती है।

मर्!!!

25. सत् ्धचत् ्आनन्द

1. स्जसमें सदोंह नहीांई सत् ्है। स्जसमें अज्ञान नहीांई धचत् ्है। स्जसका कोई र्रि्ाी नहीांई आनन्द है।

2. 'भास है' यही तो सत् ्है। भासना यही तो धचत् ्है। इस भास से जो आनन्द, यही तो आनन्द है।

3. जो था, जो है और जो रहेगा ई सत् ्है। इसको जो जानता है, ई धचत् ्है। स्जसके मलए जो जाना जाय ई आनन्द है।

4. स्जसमें कांा न हो ई सत् ्है। स्जसमें अज्ञान न हो ई धचत् ्है। स्जससे ेर्ैराग्य न हो ई आनन्द है।

5. 'म'ैं हूँ इसमें कांा नहीां, इसमलए 'म'ैं आत्मा सत् ्हूँ।

'म'ैं हूँ इसका अज्ञान नहीां, इसमलए 'म'ैं आत्मा धचत् ्हूँ।

'म'ैं हूँ इससे र्ैराग्य नहीां, इसमलए 'म'ैं आत्मा आनन्द स्रूप हूँ।

6. सभी की इचछा रहती है फक म ैंहमेर्ा जीर्ति रहूँ, इसमलए जीर् सत् ्है। सबों की यही इचछा होती है फक म ैंसब कुछ जान लू,ां इसमलए जीर् धचत् ्है।
सबकी यही इचछा होती है फक म ैंहमेर्ा सुखी रहूँ, इसमलए जीर् आनन्द स्रूप है। कोई भी बिांन में एक सेकेण्ड भी नही ांरहना चाहता, क्योफक जीर् स्ितां है।
छोिा बालक भी यही चाहता है फक घर के सभी छोि-बड़ेमेरे र्ासन में रहें, इसमलए जीर् सबका र्ासक है।

26. कत्ताश-कम-शफिया

1. कम श4 प्रकार के होते ेहैं-

पुण्य कम,श पाप कम,श पुण्य-पाप ममधश्रत कम शऔर पुण्य-पाप रहहत कम श।

लज्जा भय से रहहत पुण्य कमी ला भय के सहहत पाप कम।श अपरिाी को दण्ड देना पुण्य, सकाीच भय के कारण दण्ड ना देना पाप, दोनों से सयुांक्त पुण्य-पाप ममधश्रत कम।श

पुण्य और पाप दोनों र्ंकल्प के अभार् में जो कम शफकये जाय ेंउन्द्हें पुण्य-पाप से रहहत कम शकहते ेहैं।

2. भगर्ान के मलए र्ही कम,श कम शहै, जो अथ शरहहत हो।

3. अथ शरहहत जो कम शहोते ेहैं, उन कमों का ही नाम पुण्य-पाप रहहत कम शहै।

4. अथ शरहहत कम शका अथ शसहज कम शहोता है, क्योंफक भगर्ान सहज रूप है।

5. पुण्य-पाप कमों के अस्स्तत्र् का अभार् ही ज्ञानास्ग्न सेकमों का दग्ि होना है।

6. पुण्य है, पाप है इस प्रकार का र्ंकल्प कमों का अस्स्तत्र् है।

7. बिोर्ान से अथहशीन कम शहोते ेहैं। अज्ञानी से अथ शसहहत कम शहोते ेहैं।

8. आत्म देर् में अथहशीन कम शहोते ेहैं। जीर् देर् में अथ शसहहत कम शहोते ेहैं।

९. अत्यन्द्ताभार् जगत् ्में पुण्य-पाप दोनों कमों से रहहत कम शहोते ेहैं।

10. ज्ञान जगत् ्में प्रारधि कम शरे्ष रह जाता है, लेफकन 'म`ैं आत्म जगत् ्में प्रारधि कम शका भी नार् हो जाता है।

11. देह के अस्स्तत्र् में प्रारधि कम शका अस्स्तत्र् है। प्रारधि कम शमानने तक अज्ञान का अस्स्तत्र् है।

12. सधांचत, प्रारधि, फियमाण ये कम शहै ही नहीां, इस प्रकार के अनुभर् का नाम समस्त कमों का नार् है।

13. जो भास रहा है यह अकम शरूप जगत् ्है और अमुक भास रहा है यह कम शरूप जगत् ्है।

14. स्त्राभार्क कम,श अकम शहै। अस्त्राभार्क कम,श कम शहै।

15. कमों का र्कल्प कमों का भार् है। र्कल्प का अभार् सर् शका रुभार् है।

16. अहांकार युक्त जो कम शफकया जाता है उसी की ही स्मृतृत रहती है। रुभार् में स्स्थत होकर जो कम शफकया जाता है उसकी स्मृतृत नहीांरहती।

17. कमों के कत्तापशने का अहांकार ही कमों का रुरूप है।

27. मन (धचत्त)

1. मन कैसा है? जैसा म ैंमानता हूँ, र्ैसा ही मन है।

2. मन कहा ूँहै? जहा ूँम ैंहूँ।

3. मन कौन है? मन, मन है।

4. अपने आपको कुछ मानना ही मन की उत्पतत है।

5. 'म' ैं आत्मा को कुछ भी मान लेना ही मन का स्रूप है।

6. न मन चचांल है, न स्स्थर है। चचांलता का र्ंकल्प ही चचांलता है, स्स्थरता का र्ंकल्प ही स्स्थरता है।

7. मन का स्भार् यहद चचांल है तो चचांलता का र्ि्रोर् करना मानो खतरा मोल लेना है।

8. जब म ैंकुछ बनता हूँ तब मन बनता है, जब में कुछ नहीांबनता तब मन भी नहीां बनता। अतः कुछ भी मत बनो।

9. अपने आप 'म' ैं को जब तक कुछ भी माना जाय तब तक मन रूपी दाना कचचा है। म ैंको 'म' ैं ही जानने पर इस ज्ञान रूपी अहठन में मज रूपी दाना भुन जाता है।

10. मन अथ शमें जाता है, पदाथ शमें नही।ां

11. मन का र्ंचरण मान्द्यता जगत् ्में है, आत्म जगत् ्में नही।ां

12. मन अर्द्या जाल में िूँसता है, र्द्या में नही।ां

13. मन जीर् सृसृष् िमें जाता है, ईश्र्र सृसृष् िमें नही।ां

14. मन शुद्ध है तो 'म'ै ही हूँ और अशुद्ध है तो मन है।

15. मन को रोकने में जीर्-भार् तनहहत है और न रोकने में 'म'ै भार् स्जहहत

16. मन को रोकने में चचांलता तनहहत है और न रोकने में स्स्थरता तनहहत है।

17. मन के उदय में प्रपचां का उदय है और मन के अनुदय में प्रपचां का अनुदय है।

18. मन रोकने से नहीांरुकता, न रोकने सेरुकता है।

19. कुछ बनने पर यह मन रोकने पर भी नहीांरुकता, लेफेकन कुछ न बनने पर यह मन त्रबना रोके ही रुक जाता है।

20. मन के रोकने का प्रयास मन के रुकने ्में बािक है।

21. मन को रोकने का प्रयास मन के अस्स्तत्र् का पोषक है।

22. मन रोको मत, जानेदो।

23. रोकना है तो रोकने को रोको। जानेदेना है तो जाने देने को जानेदो।

24. मन रोकने से रुकता है, न रोकने सेस्स्थर होता है।

25. मन के रुकने में भय है, स्स्थर में तनभयशता है।

26. मन को स्स्थर करना है तो मत रोको और मन को चचांल करना है तो रोको।

27. जो स्जसकी र्स्तु है उसकी स्स्थरता उसी में होती है, अन्द्य में नही।ां

28. प्रत्येक र्ॎषय का अनुभर् करने के मलए यहद मन उपकरण है तो सर्कशाल में मन स्स्थर है। हाँ, यह भार् स्स्थर नहीांअस्स्थर है।

29. यहद अपने मन को र्् में करना चाहो तो अपनेस्रूप आत्मा से मन को अलग मत देखो।

30. अपने 'म'ै आत्मा को कुछ भी न मानने पर ही मन र्् में होता है।

31. मन देर् में खड़े ्होकर देखो तब मन का अस्स्तत्र् है और स्रूप स्स्थतत में स्स्थत होकर देखो तो मन तीन काल में है ही नही।ां

32. मन मारनेका सबसे बड़ा हधथयार यही है फक मन की हस्ती को न मानना।

33. स्जस प्रकार भगर्ान की तलार् न करने पर भगर्ान ममलता है, इसी प्रकार मन को न रोकने पर मन रुकता है। र्श्र्ास न होतो अनुभर् करो।

34. म ैंअमुक हूँ, इस भार् से म ैंमन के बस में हो जाता हूँ और म ैं'म'ैं हूँ इस भार् में मन 'म'ैं के बस में हो जाता है।

35. मन द्र्ारा रधचत भगर्ान, उसका भजन, मन की एकाग्रता पर तनभरश है, मन से परे जो भगर्ान उसके भजन के मलए एकाग्रता की उपेक्षा है।

36. भगर्ान का सर्कशालीन स्मरण र्ही है जो मन के भार् में भी हो और अभार् में भी हो। जब मन का रुभार् ही चचांलता है तब तनग्रह फकां कररष्यतत।

37. भगर्ान का स्मरण मन से नहीांहोता।

38. मन जीतने की चीज नही ांहै। मन जीतनेके र्कल्प के पीछे रिुता खड़ी है। जब मन को रिु मानते ेहो तभी जीतनेका प्रश्न होता है।

39. जब मन भगर्ान से अलग नहीांहै तो जीतोगे ेफकसको।

40. भगर्ान और गुरु को अपना मन ही देना चाहहए, क्योंफक मन के मसर्ाय अपना कुछ है भी नही।ां स्त्री-पुिाहदक अपनेनही ांहैं।

41. आत्म कृपा सेमन स्स्थर होता है। सतां कृपा से मन लय होता है।

42. कृत्रिम सिान काल में मन नारायण रूप नहीांजीर् रूप रहता है, इसमलए मन को एकाय करने में कहठनाई पड़ती है।

43. मन स्र्ाभार्क एकाय हो जाने पर नारायण रूप रहता है और कृत्रिम सिान द्र्ारा मन एकाग्र होनेपर जीर् रूप हो जाता है।

44. हर समय हर अर्स्था में मन नारायण ही है। इसमलए मन स्र्ाभार्क एकाग्र है।

45. मन 'स्र्' के भार् में रुभार् रहता है और 'पर' के भार् में मन हो जाता है।

46. तुम रुभार्ी हो, मन तुम्हारा रुभार् है।

47. मन रुभार् होनेके कारण स्र्ाभार्क रुकता है, सिान से नहीांरुकता।

48. मन में जो फियारी्लता भासती है, ई मन का रुभार् है, मन का र्कार नही।ं

49. आत्मा अकृत्रिम, अफिय है और मन आत्मा का रुभार् है। रुभार् रूप मन अकृत्रिम, अफिय रुभारी्
आत्मा से मभन्द्न नहींहै।
50. मन अकृत्रिम, अफिय आत्मा का है। इसमलए, काल्पतनक, कृत्रिम फिया रूप सिानों के द्र्ारा यह मन स्थाई
एकाय नहींहो सकता।
51. मन के भार्-अभार् के भार् का अभार् स्जस देर् में हो जाता है, ई 'म' ैं हूँ।

52. मन के आने-जानेका अनुभर् करना पदाथ श(आत्मा) का अनुभर् करना है। मन के आने-जानेका र्कल्प
करना ससांार का र्कल्प करना है।
53. बाह्य तथा अन्द्तजगशत के फकसी भी र्षय के अनुभर् करनेमें मन की अपेक्षा नहीं है। 54. र्दाहदक र्षयों के

अनुभर् काल में 'म' ैं रुभार् में स्स्थत रहता हूँ, इसमलए उस समय मन का अत्यन्द्ताभार्
रहता है और पूजा-पाठ, ध्यान–ारणा इत्याहद के समय अपने-आपको ससांारी जीर् मानता हूँ, इसमलए उस समय
मन का प्रादुभुार्श होता है।

55. पूजन-पाठ, ध्यान–ारणा ये सभी जीर् देर् के काय शहैं, इसमलए इनमें मन का रोकना दु:साध्य है। 56. ससांार के

प्रत्येक र्षय के अनुभर् काल में में 'म' ैं रहता हूँ, इसमलए मन के आने-जाने में हष-शर्ोक नहींहोता
और पूजा-पाठ, ध्यान- ारणा में जीर् हो जाता हूँ, इसमलए मन काबू के बाहर हो जाता है।
57. फकसी भी र्षय के अनुभर्काल में मन रहता ही नही।ं यहद र्षय के अनुभर्काल में मन रहेगा तो उसी तरह
अड़चन होगी, स्जस तरह पूजा-पाठ, ध्यान–ारणा के समय होती है।
58. रुरूप की र्मुखता में मन का अस्स्तत्र् है और मन के अस्स्तत्र् में एकाग्रता की कल्पना है।

59. मन के अस्स्तत्र् में रोकने का र्कल्प है। मन के अभार् में र्कल्प का अभार् है।

60. मन के अस्स्तत्र् में मेरा मन है और भगर्ान को दे हदया तो 'म' ैं मन हूँ।

61. जब तक मन कहता है फक म ैंमन हूँ तब तक डोलता है और जब मन कहता है फक 'म' ैं आत्मा हूँ तब अडोला

हो
जाता है।

62. जब यह मन फकसी भी र्ष्य का र्ष्य करता है तब इसका नाम हो जाता है मन और जब तनर्ष्शय हो जाता है, तब इसका नाम हो जाता है भास (जगती) और भास है र्ही अभास (आत्मा) है।

63. स्जस समय मन दु्ख सुख रूप प्रतीत हो तो समझना फक मन सर्ष्य है और स्जस समय दु्ख-सुख दोनों की प्रतीतत न हो तो समझना फक मन तनर्ष्शय है।

64. स्जसेमन न छोड़े र्ही सुख है और स्जससे ेमन भागे र्हींदु्ख है।

65. सर्ष्य मन, मन है और तनर्ष्शय मन 'म'ैं हूूँ।

66. तमोगुणी मन में अपना स्रूप साढ़े तीन हाथ का हदखता है। रजो- गुणी मन में अपना स्रूप ससांारी जीर् हदखता है। सतोगुणी मन में अपना स्रूप एक और व्यापक हदखता है और त्रिगुणात्मक मन के अस्स्तत्र् के अभार् में म ैंजैसा हूूँ, र्ैसा ही हदखता हूूँ।

67. आत्म देर् में पहुूँचने पर मन का अत्यन्द्ताभार् हो जाता है।

68. मन की र्क्षेपार्स्था एर् ांसमाधि अर्स्था की कल्पना का न उठना ही आत्मदेर् का तनर्ास है।

69. र्ष्यों से मन रहहत हो जाना ही ध्यान है।

70. मन के तनरोि में प्राण का तनरोि और प्राण के तनरोि में मन का तनरोि है। मन और प्राण के तनरोि में र्ासना का तनरोि और र्ासना के तनरोि में मन और प्राण का तनरोि है।

71. मन का प्रेम ब्रह्म सेहै न फक र्ष्य से, क्योंफक दोनों ही नपुसांक मलगां हैं। ब्रह्म के समान मन भी अफिय है।

72. मन जब तक आत्मा नहीां होता तब तक उसका सकांल्प मसद्धि नहीांहोता।

73. मन के अत्यन्द्ताभार् का ही नाम मन का र्लीनीकरण है।

74. मन के अस्स्तत्र् के अभार् का भार् ही मन का र्केन्द्रीकरण है।

75. मन के तुम घर हो, मन की खुराक हो, मन के प्राण हो, मन के उत्पर्त्त, *पालन, सहांार का स्थान हो। तो फिर मन को आनन्द्द सागर अपना आप क्यों नहीांदे देते।

76. यहद मन तुमसे ही ममलने का इचछुक है तो तुम अिामा मन को क्यों नहीांदर्नश दे देते।

77. यहद इस मन को तुम्हारी ही प्यास है तो तुम आनन्द्द स्रूप उसमें क्यों नहीांसमा जाते।े

78. यहद तुम ही मन के घर हो तो आप से बाहर काल्पतनक पदार्थों में स्स्थर करने की कोमर्र् क्यों करते ेहो।

79. यह मन क्षणणक आनदां में तनरिी और एकाग्र होता है। तनत्यानन्द्द में स्स्थर और लय होता है।

80. मन का बहार् स्र्ाभार्र्क आनन्द्द की ओर है, न फक कृत्रिम की ओर।

81. मन के तनरिी का िल र्र्ेष आनदां है। मन के अतनरिी का िल सामान्द्य आनन्द्द है। र्र्ेष आनन्द्द का पयायश र्र्षयानन्द्द या क्षणणक आनन्द्द और सामान्द्य आनन्द्द का पयायश ब्रह्मानन्द्द, तनत्यानन्द्द तथा आत्मानन्द्द है।

82. यहद मन धचतांाओांसे मुक्त है तो र्रीर कभी रोगी नहीां हो सकता।

83. मन रोकने के र्र्कल्प का अभार् ही मन के रोकने का अभ्यास है।

84. मन के अस्स्तत्र् के त्याग का नाम र्ैराग्य है और मन, र्चन, कम शतीनों से कुछ भी सिान न करना ही अभ्यास है।

85. मन के रोकने का अभ्यास आत्म देर् का प्रर्ास है।

86. मन के रोकने का अभ्यास आत्म देर् का अस्थाई तनर्ास है।

87. मन के न रोकने का अभ्यास स्र्रूप स्स्थत नगर का स्थाई तनर्ास है।

88. मन तनरिी का अनभ्यास र्ोंं की जैसी िढ़ी खीर है।

89. मन सदैर् रुका है, इसकी अनुभूतत ही मन के रोकने को रोकना है।

90. मन को न रोकना ही मन के रोकने का सिान है।

91. मन को मन न मानना ही मन की स्स्थरता का सिान है।

92. मन की याद न करना ही मन के तनरिी का सिान है।

93. स्र्-स्र्रूप में स्स्थत हो जाना ही मन के लय का सिान है।

94. मन को रोकने के मलए फकसी भी प्रकार का सिान न करना ही मन को रोकने का सिान है।

95. फकसी भी देर् में फकसी भी र्स्तु के साथ मन को बाांि देने से मन का क्षणणक तनरिी होता है।

96. मन की एकाग्रता कृत्रिम सिानों से क्षणणक होती है और स्ाभार्क स्मरण रूप सिान से मन स्थाई एकाय होता है।

97. काल्पतनक र्षय में यह मन कृत्रिम सिान द्व्रारा क्षणणक एकाग होता है और स्ाभार्क र्षय आत्म रुरूप में यह मन रुभार्तः स्थाई रूप से एकाग होता है।

98. कृत्रिम सिान फिया रूप होता है और स्ाभार्क सिान अफिय होता है।

99. कृत्रिम सिान काल्पतनक होता है और अकृत्रिम सिान स्ाभार्क होता है।

100. मन को जीतना सिान का र्षय नहीांहै। मन की उपेक्षा करना मन के नार् का सिान है। अपनेआपको देखना ही मन की उपेक्षा है।

101. मन है, यह मानकर मन के रोकने का सिान मत करो। मन नहीांहै ऐसा जानकर सिान करो।

102. सिान काल तक मन रहता है। सिान समास हो जाने पर मन की समास्प्त हो जाती है।

103. मन की एकाग्रता और तनरिो सिान जन्द्य है, स्स्थर और लय कृपाजन्द्य है।

104. मन को अफिय बनाने के मलए मन, र्चन, कम शद्व्रारा कुछ भी सिान न करना ही परम सिान है।

105. स्जस प्रकार रुरूप स्स्थतत स्स्थर है, इसी प्रकार मन की एकाग्रता भी स्स्थर है।

106. मन को स्स्थर करना चाहो तो अपनेमें को आत्मा जानो और यहद रोकना है तो जीर् मानो।

107. मन अथर्ा माया ये दोनों ही आत्म रुरूप हैं। व्यस्ष्ट दृस्ष्ट से मन और समस्ष्ट दृस्ष्ट से माया।

108. मन है तो माया है, मन नहीांतो माया नही।ां

109. यहद माया सेतरनेकी इचछा है तो माया पतत को माया से मभन्द्न मि जानो।

110. एक रीर के अदांर की चचांलता का नाम मन है और समस्त रीरों की चचांलता का नाम माया है।

111. आत्मबिो का िल धचत्त का समिान है।

112. धचत्त का समिान ही मर्ष्यत्र् भार् का प्रतीक है।

113. धचत्त कहता है फक म ैंधचत्त हूँ, इसमलए 'म'ैं धचत्त हूँ।

114. 'म'ैं से मभन्द्न अगर धचत्त है तो धचत्त नहीींऔर अमभन्द्न है तो धचत्त नहीीं।

115. मन के तनरिो में हो और अतनरिो में न हो, र्ह मन का ही धचतांन है और तनरिो-अतनरिो दोनों में जो हो र्ह आत्म धचतांन है।

116. मन बनाकर धचतांन करना धचत्त का धचतांन है। न बनकर, न बनाकर धचतांन करना धचत (आत्मा) का धचतांन है।

117. चचांलता ही धचत्त है और तनश्चलता ही धचत् है। 118. धचत्त के धचतांन से धचतांा का र्ृकास है। धचत् के धचतांन से धचतांा का र्नार् है। 119. र्ृकल्प सहहत तनर्ृकशल्प धचत्त है। तनर्ृकशल्प के र्ृकल्प का अभार् ही धचत है। 120. तनर्ृकशल्प धचत्त, धचत्त का र्ृकार है। तनर्ृकशल्प धचत, धचत का स्र्भार् है। 121. तनर्ृकशल्प धचत्त में र्ृकल्प का भय है। तनर्ृकशल्प धचत में भय का भी भय नहीीं।

122.

धचत ही धचत्त, धचत्त ही धचत है। धचत त्तवज्ञापक, धचत ही धचत ॥
धचत्त त्तवकल्प, त्तवकल्पक धचत है। धचत्त त्तववत, ि त्तववतकि धचत ।
धचत है बबम्ब, धचत्त प्रततबबन्द्म्बत । धचत सागर, आवत िहै धचत्त ॥
धचत्त अधचत्य उभय तज, धचत भज । चटपट हो, सब अन्टा धचत ॥

28. लुधियाना स्मृतत

उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसमें तुम हमेर्ा रहते ेहो। कुछ लोग प्रश्न भी करते ेहैं फक स्र्ामीजी, जब तक आपके पास बैठे रहतेहैं, तब तक तो बड़ा र्ुलक्षण आनन्द्द आता है और जब घर चले ेजाते ेहैं तो पता नहीीं आनन्द्द कहाूँ चला जाता है। भैय्या ! आनन्द्द दो प्रकार का होता है। एक र्र्ेष आनन्द्द और एक सामान्द्य आनन्द्द ! स्जसका अनुभर् म ैंकरता हूँ र्ो र्र्ेष आनन्द्द है और स्जसका अनुभर् नहीींहोता... र्ह सामान्द्य आनन्द्द है। स्जसका अनुभर् होता है, र्ह र्र्ेष आनन्द्द है, मनोजन्द्य आनन्द्द है, मन की स्स्थरता का आनन्द्द है, क्षणणक

आनन्द है, अतनत्य आनन्द है अथर्ा अतनत्य सुख है अथर्ा दूसूरे र्धदों में र्ष्ियानदां है, चाहे र्धदाहदक र्ष्ियों के द्र्ारा आनन्द की उपलस्धि हो, प्राप्त हो अथर्ा समाधि के द्र्ारा आनन्द ममले,े मगर है ह भी र्ष्ियानन्द। क्योफक समाधि तनत्य तो होती ही नही।ां चाहे समाधि एक हदन की हो, एक कल्प की हो, एक युग की हो। समाधि जब तुमने लगाई है तो कभी न कभी िूिेगी ही...। तो, समाधि जन्द्य आनन्द को भी हम ब्रह्मानन्द नहीांकहेंगे। (मुक्तानुचर) र्ास्त्रीजी 'जी'। ह भी र्ष्ियानन्द ही है। और फिर, उसका अनुभर् भी म ैंकरता हूाँ। र्ाह बड़ा मजा आया। बड़ा आनन्द आया। ये र्ष्ियानन्द है। स्जस आनन्द को म ैंजानता हूाँ। स्जस सुख का अनुभर् म ैंकरता हूाँ र्ो आत्म-सुख नहीांहै, र्ष्ियानन्द है। और, जहा ाँपर सुख और दुुःख की अनुभूतत नही ांहोती र्ो ब्रह्म सुख है। र्ाह! 'म'ैं आत्मा!

(मुक्तानुचर) शास्त्रीजी -

शोक, मोह, भय, हरष, हदवस, तनमस, देस, काल जहं नाही।
सुख-दुुःख से कोई परे परमपद तेहह पद रहा समाई ।।

गरज ये है फक अभी जो ये सुन रहे हो (हमसे जो सुन रहे हो) ये भी एक र्ष्िय है। और, इस र्ष्िय के श्रर्ण

काल में धचत्त का तनरोि होता है। जी। तो र्ृष्त्तजन्द्य आनन्द को र्ष्िय आनन्द कहते ेहैं। यह ही तुमको यहााँसामने ममलता है। और, जब घर जाते ेहो तो यह र्ष्िय नहीांरहता। तो आनन्द भी नहीांममलता तो तुम घबरा जाते ेहो। नहीांगा? जी! त्रबल्कुल ठीक !! भइगे ेमहराज ! एक रस स्स्थतत हमारी नहीांरहती। अरे, स्स्थतत भी कभी एक रस रहती है। जो स्स्थतत बनी है भैय्या, र्ो एक रस कैसे ेरहेगी। उस स्स्थतत और अस्स्थतत का जो अनुभर् करता है, जानता है र्ो 'म'ैं आत्मा एक रस हूाँ। बाकी स्स्थतत तो बनती त्रबगड़ती रहती है, जी हााँ! र्ाह ! र्धद से, स्पर् शसे, रूप से, रस से, गिां से, ये सब क्षणणक सुख के सािन हैं। इन र्ष्ियों के द्र्ारा जो क्षणणक आनन्द प्राप्त होता है, उसमें मन र्र्भोर हो जाता है और उसी को स्स्थतत समझ के उसी में लट्िू हो जाते ेहैं और जब ह र्ष्िय नहीांरहा तो र्ष्िय के अभार् में (र्ष्ियजन्द्य सुख का भी अभार् हो जाने पर) र्ो व्यस्क्त घबरा जाता है फक हमारी स्स्थतत कहा ाँ चली गयी। अरे, गयी कहा?ाँ र्ाह! म ैंतो उस स्स्थतत का जाननेर्ाला, जहा ाँका तहा ाँहूाँ। र्ही ांका र्हीांहूाँ स्जस सुख को पाकर मन सुखी होता है, ह र्ष्ियजन्द्य सुख है और स्जस सुख को पाकर मन अमन हो जाता है ह ब्रह्म सुख है (मुक्तानुचर) 'जी', स्जस सुख को पाकर मन अमन हो जाता है, भगर्ान हो जाता है, मन आत्मा हो जाता है, ह ब्रह्म सुख है। ह आत्म सुख है। ह तनज सुख है। तो सर्ग-पि कलिाहद सािनों के द्र्ारा जो... सर्ग-पि कलिाहद इत्याहद का पररत्याग करके पूजा-पाठ, ध्यान-िारणा में जो सुख ममलता है, इस सुख में और प्रपचांजन्द्य सुख में कोई अतांर नहीांहै। कोई सािन तमोगुणजन्द्य है, कोई रजोगुण और कोई सािन सतोगुणजन्द्य है। ध्यान-िारणा, समाधि सतोगुणजन्द्य सािन है, र्ष्ियाहदक प्रपचां तमोगुण, रजोगुणजन्द्य हैं। मगर सुख तो एक ही है। मगर इनको जो जानता है, इनका जो अनुभर् करता है ह 'म'ैं आत्मा...। र्ाह! इसी स्स्थतत में तुम हमेर्ा रहते ेहो। सुख को छोड़ दो, दुुःख को छोड़ दो-यही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। इस स्स्थतत से कभी कोई र्र्चमलत नहीांरहता। तुम जानो तब ये स्स्थतत है तुम्हारी, न जानो तब ये स्स्थतत है। इससे तुम कभी र्र्चमलत नहीांहोते। इससे तुम

कभी िस से मस नहींहोते। ऐसी स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसमें तुम हमेर्ा रहते ेहो। र्ो हमेर्ा रहने र्ाली जो स्स्थतत है, र्ो सािनजन्य नहींहै। सतांर्ण की देन कहो अथर्ा सतांकृपा। इसी को सहजपद, सहजार्स्था। त्रबना कुछ फकये ही जो प्राप्त हो-र्ह सहज है। भगर्ान का र्र्णन र्ास्र्ों में, रामायण में...

सहज पद -

सहजहहं ंचले, राम भगवाना । सहज प्रकाश, रूप भगवाना ||
संकर सहज, स्त्वरूप संभारा । सहज स्त्नेह, स्त्वामी सेवकाई ।।

क्योफक परमात्मा सहज है, जो सर् शका अपना आप होता है। यही स्स्थतत हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। ये स्स्थतत बनाए सेनहींबनती और न इसके मलए कोई सािन है। स्स्थतत तो स्र्य ांही है। सतां महानपुरुष कृपा करके उसकी अनुभूतत करा देते ेहैं। स्स्थतत में स्स्थत नहींकरते, े स्स्थतत की अनुभूतत करा देते हैं। उस स्स्थतत का अनुभर् करो। कौन सी? उस स्स्थतत का। ये सकोंत फकिर जा रहा है। उस स्स्थतत का...। स्जस स्स्थतत में तुम हमेर्ा रहते े हो। इतना ही सकोंत फकया जा सकता है, स्जसमें तुम हमेर्ा रहते ेहो। अब 'म'ै फकसमें हमेर्ा रहता हूँ? फकसी के ध्यान में रहता हूँ फक फकसी की िारणा में रहता हूँ फक फकसी की समाधि में रहता हूँ फक फकसी के राग में रहता हूँ फक फकसी के द्रेष में रहता हूँ। फकसमें 'म'ै हमेर्ा रहता हूँ। कौन सी स्स्थतत है? र्ाह! अरे उस स्स्थतत में 'म'ै हमेर्ा रहता हूँ, स्जस स्स्थतत के मसर्ाय दूसूरी स्स्थतत है ही नही।ां मर्! उस स्स्थतत में 'म'ै हमेर्ा रहता हूँ, स्जस स्स्थतत के मसर्ाय दूसूरी स्स्थतत है ही नही।ां अब फकसी को मत बिाूँो, फकसी को मत रोको। त्रबना रोके, त्रबना बिाेां ेअगर मन बिां जाय, त्रबना रोके मन रुक जाय, त्रबना रोके इस्न्द्रयाूँकही ांन जायेंतब समझ लेना फक यही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। अरे, स्जस स्स्थतत का अनुभर् कर लेनेपर... मर्! स्जस स्स्थतत में रहने पर (ऐसा कहो) उस स्स्थतत के मसर्ाय दूसूरी स्स्थतत का अनुभर् न हो... र्ही हमेर्ा रहनेर्ाली स्स्थतत है। (ऐसा कहो) याद हदला दो, हम क्या कह गए हमको याद नही।ां स्जस स्स्थतत में रहने पर उस स्स्थतत के मसर्ाय दूसूरी स्स्थतत का अनुभर् न हो-र्ही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। र्ाह! अब त्रबल्कुल साफ हो गया। क्लीयर...। (जी भैय्या! ये सब नोट ले लेना। जरा जरा सी हहांि) फिर से कहो क्या कहा मनैं। स्जस स्स्थतत में रहने पर उस स्स्थतत के मसर्ाय दूसूरी स्स्थतत का अनुभर् न हो, र्ही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। ये बात...। अब पकड़ लो इसको, अभी इसके ऊपर कुछ अनुभर् करायगें। जमा लो ! अभी चचा शहो रही है स्जसकी, बड़ी र्र्लक्षण चीज है। स्जस स्स्थतत में रहने पर स्स्थतत के मसर्ाय दूसूरी स्स्थतत नहींरहती यही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। याने हूँदेखो-स्जस स्स्थतत में रहने पर उसके मसर्ाय दूसूरी स्स्थतत का अनुभर् न हो र्ही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। 'र्ाह।' घूम गया हदमाग! अब समझो इसको - अब जमो इसमें ये र्रीर है, ये मन है, ये बुद्धि है, ये धचत है या अहांकार है, ये इस्न्द्रयाूँहैं, ये प्राण हैं। में स्त्री हूँ या पुरुष हूँ, म ैंजड़ हूँ या चेतन हूँ, म ैंसत्य हूँ या असत्य हूँ या 'म'ै हूँ फक र्ह हूँ।

(मुक्तानुचर र्ासुजी) - फक 'तू' है कुछ भी अनुभर् न हो। स्र्ामी जी-क्या हमेर्ा इन स्स्थततयों का अनुभर् होता है।

प्रततमा बहन - कोई भी ऐसी चीज नहीां, स्जसका अनुभर् हमेर्ा रहता हो।

स्र्ामीजी- जब र्ो स्स्थतत दरअसल होय तब तो उसका अनुभर् हो। र्ो स्स्थतत तो हमारे बनाए से बनती है। हाूँजी! जी हा!ूँ जब 'म' ैं मानता हूँ मन तो मन बन जाता है, जब 'म' ैं मानता हूँ बुद्धि तो बुद्धि आ जाती है। इस्न्द्रयाूँमानता हूँ तो इस्न्द्रया ूँआ जाती हैं। जब कोई पूछता है तो 'म' ैं कहता हूँ और नही ांपूछता तो-जार्! देखो, फकसी के न पूछने पर जो 'म' ैं रहता हूँ, र्ही 'म' ैं हूँ। फकसी के न पूछने पर भी जो रहता हूँ...। र्ाह!

प्रततमा बहन- अपने आपके न पूछने पर, न बननेपर जो रहता है।

स्र्ामी जी- मर्! क्या अकेले ेभी 'म' ैं 'म' ैं धचल्लाता हूँ?

प्रततमा बहन- ना।

स्र्ामी जी- अगर अकेले ेमें धचल्लाऊँ तब तो 'म' ैं हूँ। अरे, सुषुस्प्त में, समाधि में, मूछा शमें कहा ूँ'म' ैं- 'म' ैं कहता हूँ। मगर रहता तो हूँ। उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसमें हमेर्ा रहते ेहो।

प्रततमा बहन- स्र्ामी जी! र्ाल ओढ़ लो ठण्डी है।

स्र्ामीजी- फिर ये जो तनरूपण हो रहा है, ये र्ाल से कम है? गनगना आती है...। तबीयत

प्रततमा बहन- मेरा हदमाग गरम हो गया था, चक्कर हो गया था।

स्र्ामी जी-तुम ग्रहण कर रहे हो ना। ग्रहण-त्याग में ये सब बातें होती हैं। यहाूँग्रहण-त्याग है ही नही।ां

प्रततमा बहन - हे राम! जो कुछ होगा र्ो ग्रहण-त्याग तो नहीांहै, लेफकन जो कुछ करना–रना, र्ो काहे में रहेगा? सुबह-सुबह आप बता रहे थेना फक हम भास-भास देख रहे हैं। आज सुबह ही।

स्र्ामीजी-ये तो म ैंबोल रहा हूँ ना, यह भी तो भास ही है। (हांस रहे हैं सभी) 'जी हा।ूँ' ये भी तो भास ही है।

प्रततमा बहन- कह रहे थेसुबह-सुबह अथ शनहीांहै, अथ शका भान नहीांहोता। भास-भास हमको हदखाई देता है तो मनैं कहा- स्र्ामी जी-फिर मनैं सोचा फक नहीांबोलना चाहहए-चलना-फिरना, काम–ाम सब अथ शमें है फक भास में?

स्र्ामी जी- नहीां, देखो! देखो !! भास चौबीस घिांा रहता है। यही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। और, र्ेकल्प तो कभी-कभी आता है। स्जस स्स्थतत में रहने पर र्ैकैस्ल्पक स्स्थततयों का अनुभर् न हो, र्ही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है।

प्रततमा बहन- स्जस स्स्थतत में रहने पर र्कल्प होनेर्ाली स्स्थतत में स्र्ामीजी-र्ैकैस्ल्पक।

स्र्ामीजी - र्ैकैस्ल्पक स्स्थतततयों का अनुभर् न हो, र्ही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। (मुक्तानुचर र्ार्स्ीजी) - अब स्र्ामी जी को म ैंबोल रहा हूूँ, ये अनुभर् नहीांहो रहा है।

स्र्ामीजी - न, त्रबल्कुल न!! यही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। अगर अनुभर् होगा तो मोर ददा नइ बोल सकय। हा।ूँ म ैंबोल रहा हूूँ ये अनुभर् नहीांहो रहा है। यही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। हमी नही।ां 'जी नहीां!' ये सबकी बात है। जो कोई भी बोलता है, म ैंबोल रहा हूूँ, ये अनुभर् नहीांहोता। पर्ु-पक्षी, ज्ञानी-अज्ञानी, सबका यही हाल है। सत्,् त्रबल्कुल ठीक है महराजा मुक्तानुचर र्ार्स्ीजी-फकसी को अनुभर् नहीां होता फक में बोल रहा हूूँ। अचछा! कम शकरता है, तब भी ये कर रहा हूूँ, ये अनुभर् नहीां होता।

प्रततमा बहन- बोलता क्या, करता क्या, चलता क्या, जो कुछ भी करता है तो ये अनुभर् थोड़े ही होता है।

स्र्ामी जी- जी हाूँ! यही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है।

झाडू दाऊ- अचछा, र्ो तनकालो ना सूि थोड़ा।

मुक्तानुचर र्ार्स्ीजी - रहौनगा, चलन दौ ना इही ला, राहन दौ ना इही ला जी ।
(रहने दो ,इसी को चलने दो, इसी को रहने दो)
स्र्ामी जी- उकिगे का गा? (ऊब गये क्या ?)

झाडूराम - नहीां, कापी ला तनकामलस ना तब इही ला कहत रेहेंर्। (नहीांडायरी को तनकाले न इसमलए इसी को कह रहा हूूँ ।)

मुक्तानुचर र्ार्स्ीजी- कई कोहि तनकलही अभी। (कई कोहि तनकलेगा अभी।)

स्र्ामी जी - र्ाह! उस स्स्थतत का अनुभर् करो... यही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थरता है। स्स्थतत और अस्स्थतत दोनों की अनुभूतत, स्जस स्स्थतत से होती है र्ही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। जैसे, े सुन रहे हो र्षय को हमसे।

मुक्तानुचर र्ार्स्ीजी-सुनने का अनुभर् नहीांकर रहा हूूँ। स्र्ामी जी- 'जी।' जब कोई पूछता है, क्या कर रहे हो? तब उस र्क्त फिर कता,श कम,श फिया, तीनों बन जाते ेहैं। न दर्नश-काल में दृश्य का अनुभर् होता है, न श्रर्ण फिया काल में र्ंद र्षय का अनुभर् होता है? यही हालत है। ओ हो... प्रर्ान्द्त महासागर अपनी महहमा में ज्यों का त्यों स्स्थत है। र्ाह! अब छोड़ दो बागडोरा षण्डनपुसांक की बागडोर छोड़ दो।

स्र्ामी जी - र्प्रमांसपाल साहब (ठा. जर्ाहर मसहां जी) नहीांरहे, जब गए थेर्स्र्नो एक और अनुभर्

तनकला था। 'जी' र्हीं!

र्प्रसांपल सा.- 'षण्ड नपुसांक' क्या है? म ैंभी पूछनेर्ाला था।

प्रश्न ये था फक मन कब पैदा होता है? फकससे ेपैदैा होता है? मन क्यों पैदा होता है? तो, जैसै ेप्रकृतत-पुरुष के सयाोग से सतांान पैदैा होती है, उसी तरह मान्यता जो है प्रकृतत है और आत्मा जो है पुरुष। 'म'ैं आत्मा पुरुष हूँ। जो मान्यता (प्रकृतत) और चेतन 'म'ैं आत्मा (पुरुष) दोनों के सयाोग से मन रूपी लड़का पैदा होता है। हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत में मन नहीांरहता। हाँ, उस समय मुण्डा नहीां रहता और न कुड़ी रहती। हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत में मन नही ांरहता और मन के नहीांरहने पर कत्ताश, कम,श फिया। रष्टा, दर्नश, दृश्या ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय। प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय। फकसी की अनुभूतत नहीांहोती। और, जहाँअपने'म'ैं को माना फक 'म'ैं अमुक हूँ तो मान्यता और आत्मा दोनों का (जहा ँप्रकृतत-पुरुष का) सयाोग हुआ तो ि ट्से 'मुण्डा' पैदा हो गया।

मुक्तानुचर र्ास्ी जी- 'जी।' स्र्ामी जी- यही मन की पैदैाइर् है। अब मन को व्याकरण र्ास्में नपुसांक मलङ्ांग कहा है-मनः, मनमस, मनाामांस और ब्रह्म भी नपुसांक मलङ्ग है-ब्रह्म, ब्रह्माणण, ब्रह्माणण तो कहते े हैं फक र्ाां होती है फक नपुसांक से तो कुछ भी पैदैा नहीां होता। र्ो तो हहजड़ा माना जाता है। और, हमेर्ा मायूसी रहती है चेहरे पर, मसर्ाय ताली बजानेके उससेकुछ नही ांहोता। हहजांड़ा ताली बजाते हैंफक नहीां? मुक्तानुचर र्ास्ीजी- ''जी।' स्र्ामी जी- और उनसे ेकुछ नहीांहोता। तभी तो भीष्म दादा ने मर्खण्डी के सामनेरख हदया था निुष-बाण। लो साले मारो। र्ेश्र्-र्ेजयी योद्ा और हहजड़ा से लड़े। हाँ! ये मन जब नपुसांक मलङ्ांग है तो ये हहजांड़ा है और साले हहजड़ा में ताकत इतनी है फक क्या नाम से ये क्षण में हजारों ब्रह्मा बनाता त्रबगाड़ता है। बड़े-बड़ेको उठा-उठा के पिकता है। हहजांड़ेमें ये ताकत क्यों आयी? ये र्ाां समझ में आ गयी। मुक्तानुचर र्ास्ी जी- 'जी।' स्र्ामी जी-नपुसांक होतेहुए भी। तो ये 'साला र्ेपरीत मैथुन से पैदा हुआ है। 'म'ैं पर मान्यता-मान्यता पर 'म'ैं नही।ां आ गया समझ में? मुक्तानुचर र्ास्ी जी- 'जी।' स्र्ामी जी-जान दे कहहथे ेभैय्या! तो उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसमें तुम हमेर्ा रहते ेहो।

मन ने माना जगत् ्को, मन को मान्यो आप ।
मन ममटतेजग ममट गया, 'मुक्ता' गुरु परताप ।।

मनैंमाना मन को और मन ने माना 'म'ैं को। मुक्तानुचर र्ास्ी जी- 'जी।' स्र्ामी जी- जब मनैंमन को माना तो फिर मन की सृसृष्टि रुरू हो गयी फक ये र्रीर है, ये कत्ताशहै, ये कम शहै, ये फिया है। ये रष्टा है, ये दर्नश है, ये दृश्य है। ये सभी मन के माने हुए हैं। नहीांतो हमेर्ा रहनेर्ाली स्स्थतत तो है ही। फकसी का भी अनुभर् नहीांहोता। कैसे ेरुभार् में मस्त बैठे हो। अगर इस र्क्त फकसी भी व्यर्हाररक जगत् ्के काय शमें मन चला भी जाता है तो, अरे, नही ांहोता, ग्लातन नहीां होती फक क्यों गया और आ जाता है तो हष शनहीांहोता। र्ाह! क्यों नहीांहोता? क्योंफक 'म'ैं उस स्स्थतत में स्स्थत रहता हूँ, स्जसमें हमेर्ा रहता हूँ। हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत में रहने पर मन के

मुक्तोद्गार 119 गमनागमन होनेपर हष-शर्ोक नहींहोता। मुक्तानुचर र्ास्र्ी जी- 'जी।' स्र्ामी जी-हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत में रहने पर मन के गमनागमन सेहष-श र्ोक नहींहोता। स्जसका अनुभर् स्र्य ांकरते ेहो। अपने आप ! यहद मन के गमनागमन में हष-शर्ोक होता है तो तुमसे एक भी व्यर्हाररक काय शनहींहोंगे। रात-हदन तुम मन के तनरोि करने में ही लगेरहोगे। सारी स्जदांगी खत्म हो जायेगी। 'जी हा।ाँ' तो प्रश्न होता है फक हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत में स्स्थतत के मसर्ाय क्या और कुछ अनुभर् होता है? जी नही।ां हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत में रहने पर उस स्स्थतत के मसर्ाय दूसूरी स्स्थतत का अनुभर् नही ांहोता। क्या प्रमाण? 'म'ैं था, 'म'ैं हूँ, 'म'ैं रहूँगा, अगर इसका अनुभर् हो तो रष्टा, दर्नश, दृश्य का भी अनुभर् हो। श्रोता, कताा का भी अनुभर् हो, परन्दतु हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत में स्स्थत रहने पर स्स्थतत के मसर्ाय दूसूरी स्स्थतत का अनुभर् नहींहोता।

स्स्थतत के होते ेहुए स्स्थतत का अनुभर् नहींहोता फक स्स्थतत है ही नहीं, इसमलए अनुभर् नहींहोता? यहद स्स्थतत होय तब तो 'म'ैं सर् शको जानता हूँ तो क्या स्स्थतत को न जानूँ?

मुक्तानुचर र्ास्र्ी जी- 'जी।' स्र्ामी जी- ये श्रृखांला बिांि रही है ना। मुक्तानुचर र्ास्र्ी जी- जी हा।ाँ स्र्ामी जी- अगर उस स्स्थतत के मसर्ाय दूसूरी भी स्स्थतत होय तब तो उसको भी 'म'ैं जानूँ। जबफक 'म'ैं सर् शको जानता हूँ तो उसको भी जानूँ हूाँ! उस स्स्थतत के मसर्ाय और स्स्थतत का अनुभर् नहींहोता। ये तो तनर्र्शाद मसद्िान्दत है फक स्स्थतत दूसूरी रहती ही नहीं मसर्ाय उस स्स्थतत के। तो फिर, दूसूरी स्स्थतत को नहींजानता, क्योंफक र्ो स्स्थतत नहींहै। जो हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है, उसमें रहकर दूसूरी स्स्थतत का अनुभर् नही ांहोता या उससे र्लग होकर दूसूरी स्स्थतत का अनुभर् नही ांहोता। नहीं, उससे र्लग नहींहोता, उसमें रहकर या र्ही होकर? नहीं, र्ही होकर। जो होकर 'म'ैं स्स्थतत का, अस्स्थतत का अनुभर् करता हूँ, उसको 'म'ैं जानता हूँ। हाँजी, 'म'ैं जानता हूँ। क्या जानता हूँ? कुछ नहींजानता हूँ-बस, यही जानता हूँ, इसमलए उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसमें तुम हमेर्ा रहते ेहो। हूँ? याने मतलब ये है फक स्जस मौन का अनुभर् होता है या स्जस मौन का अनुभर् म ैंकरता हूँ, स्जस मौन को 'म'ैं जानता हूँ-र्ह इस्न्द्रयाँअथर्ा मन का मौन है। क्योफक बोलना बदांकर हदया र्ाणी का मौन हो गया। देखना बदां कर हदया नेि का मौन हो गया। सुनना बदां कर हदया कण शइस्न्द्रय का मौन हो गया। चलना-फिरना बदां कर हदया पैर का मौन हो गया। काम करना बदां कर हदया हाथ का मौन हो गया। मतलब ये है फक स्जस इस्न्द्रय का जो काय शहै र्ो इस्न्द्रय जब अपनेकाय शको छोड़ देती है उसको इस्न्द्रय का मौन कहते ेहैं। इसी तरह मन जब अफिय हो जाता है, कोई न कोई सािन के द्र्ारा मन की दौड़-िूप जब बदां हो जाती है, सकांल्प-र्कल्प से रहहत हो जाता है, तनश्चय करने से बुद्धि रहहत हो जाती है, धचतांन करने से धचत्त रहहत हो जाता है, तो स्जतनी इस्न्द्रयाँ हैं, जब अपने-अपने काय शसे सन्दांयास ले लेती हैं, काय शका पररत्याग कर देती हैं, चाहे फकसी प्रकार से करें, यह सभी मौन हैं। जी हा।ाँ तो, इस्न्द्रयाँजब तक काय शकरती रहती हैं, मन, बुद्धि, धचत्त, प्राण अथर्ा और कोड शभी इस्न्द्रया जब तक के ये सब के सब काय शकरते ेरहते ेहैं, इनका जो अनुभर् करता है, इनको जो जानता है, इनको जो देखता है और अपने-अपने काय शको त्याग करके बैठ जाती हैं इस्न्द्रयाँ, उसको भी तो जानता है, अनुभर् करता है, देखता है। तो, देखनेर्ाला, जाननेर्ाला, अनुभर् करने र्ाले ेका नाम है 'महामौना' इसे ेमहामौन कहते ेहैं। महामौन तो अपना स्र्रूप ही है। बाकी इस्न्द्रयों का जो मौन है, उसे ेमौन कहते ेहैं। दूसूरी बात यह है फक स्जस समय 'म'ैं आत्मा फकसी भी र्षय का

मुक्तोद्गार 120 अनुभर् करता हूँ, फकसी भी देर्, काल, र्स्तु को देखता हूँ या जानता हूँ, उस समय मौन स्स्थतत में ही 'म'ै सर् शको

जानता हूँ। मौन स्स्थतत में ही 'म'ै सर् शको देखता हूँ। मौन स्स्थतत में ही 'म'ै सर् शका अनुभर् करता हूँ। क्योंफक 'म'ै

स्र्य ंमहामौन हूँ और इसमलए भी 'म'ै आत्मा महामौन हूँ फक मुझ आत्मा तक मन जा नहींसकता, मौन हो जाता है। मुझ आत्मा का धचतांन धचत्त कर नहींसकता, मौन हो जाता है। मुझ आत्मा का बुद्धि तनश्चय कर नहींपाती, मौन हो जाती है। मुझ आत्मा को नेि इस्न्द्रय देख नहींसकती, मौन हो जाती है। मुझ आत्मा को र्ाणी कथन कर नहींसकती, मौन हो जाती है। इसमलए फक 'म'ै आत्मा महामौन हूँ। फकसी की र्स्क्त नहींफक मुझ आत्मा तक पहुँचे और जो पहुँचेगा र्ो महामौन होकर ही पहुँचेगा। महामौन से जुदा होकर महामौन तक पहुँचना असभांर् है। समुर से जुदा होकर नदी, समुर को नहींजान सकती और समुर से ममलकर भी नदी समुर को नहींजान सकती है। क्योफक जब समुर ही हो गई तब जानना-जनाना तो रहा ही नही।ां न जुदा होकर जान सकती है और न ममलकर जान सकती है। इसी तरह 'म'ै आत्मा को मुझ आत्मा सेमन जुदा होकर नहींजान सकता। (अग्रेंजी में - Mind can not knows, But he, Knows the mind.) अहा हा हा! मन स्जसको नहींजान सकता, मन को जो जानता है, तो मुझ आत्मा को मन नहीं जान सकता, मन को जो जानता है तो मुझ आत्मा को मन नहींजान सकता। जुदा होकर नही ंजान सकता। धचत्त जुदा होकर नही ंजान सकता, बुद्धि जुदा होकर नही ंजान सकती। र्ाणी जुदा होकर

नहींजान सकती। सबका 'राष्रीयकरण' हो गया है। हाऽूँऽ...। सबका राष्रीयकरण हो गया है। इसको गणतन्द्ि राज्य कहते ेहैं। प्रजातिां राज्य! प्रजातिां र्ासन का ये र्ींनि है फक जो कुछ भी है (तुम्हारा घर-द्र्ार, तुम्हारा िन, जो कुछ भी तुम्हारे पास चल-अचल सम्पर्त्त है) तुम्हारा कुछ नहीं, अरे, सभी कुछ राष्र का है और हम तुम भी राष्र के हैं। आज अगर र्ासन को जरूरत पड़े तो मकान से तनकाल सकता है। यही समाजर्ाद र्ासन तिां का र्ींनि है। काम करो। छः घर्ण्े के बदले ेआठ घर्ण्े बाद और प्रजातिां हरी करो, व्यापारी हो व्यापार करो, नौकर हो तो आठ घर्ण्े डॉक्ि हा दस घिां काम करो, लेफकन याद रखो फक तुम्हारा कुछ नही।ां सब राष्र का है। अपना जरा भी न मानो। कमाओ डि के, मगर अपना मत मानो। राष्र की रूपरेखा अभी पूरी तैयार नहींबन रही है। चाहते तो सब यही है बुद्धिमान लोग फक भारत में प्रजातिां र्ासन स्थार्पत हो जाये, परन्द्तु हुआ नही।ां स्र्ामी जी? हाूँजी! तो क्या तुम भी देर् के हो? और क्या आसमान के हैं हम। पैदा तो यहींसे हुए हैं हम- यहींके हाड़-मासां से र्ीर बना है और कहा ूँके। और अगर तुम्हारी जरूरत पड़ी गहनमर्ेंकि को तो? भैय्या, हम भी तैयार हैं, जानेको। तो तुम क्या करोगे?े अगर गह्नमर्ेंकि को जरूरत पड़ी तुमको फ्रांि पर भेजने के मलए मोचा शपर, तो तुम क्या लड़ाई करोगे?े अरे, जो यहाूँललकार रहे हैं, र्ो हाूँललकारेंगे। र्ो बहादुर! योद्िाओां! बढ़ो आगे े!! जी हाूँ...।

य एवं वेत्तत्त हन्तारं यश्चैनं मन्यते ेहतम् ्।

उभौ तौ न त्तवजानीतो नायं हन्द्न्त न हन्यते े॥

(गीता 2/19)

अरे, आत्मा न मरती है, न मारती है फकसी को यारों। अरे यारों बढ़ो आठो, मारो आततायों को। दुश्मनों को !! उसके अन्द्दर स्स्पररि (Sprit) भरेंगे। मोचे पर खड़े ेहोकर अगर गह्नमर्ेंकि को जरूरत पड़े, ले जाय, आज तैयार हैं, हम जानेको!!

महामौन की व्याख्या हो रही है। एक होता है मौन, एक होता है 'महामौन'। जो इस्न्द्रयों का मौन है मन, बुद्धि, धचत्त, अहांकार अथर्ा इस्न्द्रयाँआहद उनका जो मौन, चतुष्-अन्द्तःकरण अथर्ा पचांकमेस्न्द्रया,ू पचां ज्ञानेस्न्द्रया ूँसभी जब अपने-अपने काय शसे सन्द्यांस ले लेती हैं, उस मौन को इस्न्द्रयमौन कहते ेहैं और इस्न्द्रयों के करने को (इस्न्द्रयों की फियाओां को और अफिय हो जानेपर, उनके सन्द्यांस ले लेने पर, उन सब बातों को जो जानता है, देखता है, अनुभर् करता है उसे े'महामौन' कहते ेहैं। ये महामौन 'म'ैं आत्मा हूँ। इसमलए, महामौन कहलाता हूँ 'म'ैं आत्मा। स्जस आत्मा तक मन जाने में समथ शनहीांहोता, महामौन हो जाता है। धचत्त समथ शनही ां होता, अपनी धचतांन फकया से सन्द्यांस ले लेता है, महामौन हो जाता है। बुद्धि अपने तनश्चय काय शसे सन्द्यांस लेकर, मौन हो जाती है। र्ाह। र्ाणी, निेाहदक ये स्जतनी इस्न्द्रया ूँहैं, ये सब अपने-अपने कायों से सन्द्यांस लेकेर, मौन हो जाती हैं। इसमलए, 'म'ैं अिामा को महामौन कहते ेहैं। दूसूरी बीज यह है फक फकसी भी र्ष्य का 'म'ैं आत्मा जब अनुभर् करता हूँ, 'म'ैं आत्मा चचांल होकर नही ांकरता। (सत्सगाी-चचांलता का भी अनुभर् करता हूँ) स्र्ामी जी- हाूँ! अरे, स्जसका भी 'म'ैं अनुभर् करता हूँ, चचांलता का, स्स्थरता का 'महामौन' ही होकर करता हूँ।

मुक्तानुचर र्ास्र्ी जी - जी हा!ूँ स्र्ामी जी - और, ये सब मुझ आत्मा को जानना चाहें (महामौन को) तो उनको भी महामौन होना पड़ेगा। अरे, यार चोर को जानने के मलए चोर होना पड़ता है। चोर को जानने के मलए, जब चोर होना पड़ता है! चोर का पता लगाने के मलए -

कुनद हमन्द्जंस हमन्द्जंस परवाज ।
कबूतर वा कबूतर बाज व बाज ||

यारों, सजातत-सजातत सेप्रेम होता है, सजातत-र्जातत से नही।ां जो महामौन को जानने आता है, र्ो अपनेआपको खोकर, अपने आपको ममिाकर, अपना र्जूद खोकर ही मुझ आत्मा महमौन को जानेगा। दूसूरा कोई उपाय नही ांहै, इसमलए नदी का ममर्ाल हदया था फक नदी समुर से जुदा होकर न तो समुर को जानती है। अरे, जब जुदा ही हो गयी, अलग ही है, तब समुर क्या है, र्ो क्या जानेगी, और समुर होकर! तब भी नहीांजानती, फकसी भी हालत में समुर को जानने में नदी समथ शनहीांहै। इसी तरह मुझ आत्मा से मन जुदा होकर, मुझ आत्मा को नहीांजान सकता। बुद्धि, धचत्त, इस्न्द्रयाँजुदा होकर जानना चाहें, र्ष्य करना चाहें, तो नहीांकर सकती ांअसमथ श है।

गर जान जॉय - तब तो मुझ आत्मा की कोई 'पोस्जर्न' ही नही।ां और, जब 'म'ैं ही हो जाता है तब ? तब भी नही ांजानेगी। जानना कहाँ है!

नाहं मन्ये सुवेदेतत-नो न वेदेतत वेव च ।
योनस्त्वद्वेव वद्वेव-नो न वेदेतत वेव च ॥

इसमलए श्रुतत कहती है-

यस्त्यामतं ंतस्त्य मतं मतं यस्त्य न वेद 'सः ।

अत्तवज्ञातं ंत्तवजानतां ंत्तवज्ञातम त्तवजानताम् ्॥

जो कहता है मनैं ब्रा को जाना, उसनेनहीींजाना। जो कहता है नहीींजाना, उसने भी नहीींजाना। जो कहता है मनैं ब्रह्म को जाना है, उसने नहीींजाना, इसमलए फक स्त्जस ब्रह्म को तू जाननेका दार्ा करता है फक मनैं जाना। जाना, हा बहा तुझसे मभन्द्न है फक अमभन्द्न? अठार तुमनेउस ब्रहा को ममल होकर जाना तो र्ो ब्रह्म ही नहीींहै, तेरी बुद्धि तुझको िोखा दे रही है और अमभन्द्न करके जाना तो क्या जाना कुछ भी नहीींऔर अगर तू र्ंकल्प करता है फक 'म'ैं जानूगांा? तो फकसको जानेगा। अगर तुमसे मभन्द्न है तो ब्रह्म नहीींऔर अमभन्द्न है तो जानेगा फकसको?

इसमलए, स्त्जज्ञासुओ ंउस स्त्स्थतत का अनुभर् करो, स्त्जस स्त्स्थतत में तुम हमेर्ा रहते ेहो। जानना-जनाना कुछ नही–ंये भी एक बीमारी है, मुसीबत है। मुक्तानुचर र्ास्त्री जी- जी! स्र्ामी जी-फकसको जानोगे?े क्या चीज है जाननेकी? तब प्रश्न होता है फक जानना-जनाना नहीींहै तो लोग कहते ेक्यों है फक- नो दाइ सेल्फ़ Know thyself ! नो दाइ सेल्फ़ अपनेखुद को जानो, अपनेखुद को पहहचानो। तुम कहोगे ेफक आपतो कहते ेहैं फक जानना ही नही ं है। 'आयूाँ' क्या जानना? क्यों ऐसा कहा जाता है? अरे, कुछ नहीींजानना ही यही जानना है फक कुछ नहीींजानना है। बस। ससांार में कोई ऐसा व्यस्त्क्त है, जो अपने'म'ैं को न जानता हो। 'म'ैं हूाँ इसको सब जानते ेहैं। एक छोिा-सा बचचा भी। छोि बचचे से लेकर बुड्ढे तक, 'म'ैं हूाँ इसको कौन नहीींजानता, सब जानते ेहैं। तो, ये फकसके मलए आता है फक खुदु को जानो? खुद को पहहचानो? अरे, ये जानते ेहुए भी कहते ेहैं लोग फक 'म'ैं नहीीं जानता। और! भैय्या!!

'म'ैं नही ंजानता। 'म'ैं जानने को तो जानता हूाँ। 'म'ैं नहीीं जानता, क्या नहीींजानता? 'म'ैं की कोई सीगां, पूाँछ है-र्ो नहीींहदखाई देती हमको, उसको 'म'ैं नहीींजानता। क्या चीज है, स्त्जसको 'म'ैं नहीींजानता? 'म'ैं जानता तो हूाँ-पर इसको नहीींजानता फक 'म'ैं जानता हूाँ। र्ाह!! र्ास्त्री जी- 'यही न जानना है।' स्र्ामी जी-अरे, यही न जानना है, यही जानना है। (हाँसते हैं सभी) मैं जानता हूाँ, इसको नहीीं जानता। ऐसा जो जानना है, यही जानना है। नहीींजमा र्ह्मास्त्री जी- सब समझ में आ गया !! यही ममलेगा !! स्र्ामीजी। जब इतना ही ममलना है तो फिर ये पढ़ने-मलखने ेकी क्या जरूरत है? 'मर्ा' अरे, इतने हदन तक मत्था-पचची करोगे, तब तो इसकी कदर करोगे। मुक्तानुचर र्ास्त्री जी- 'जी!'

स्र्ामीजी- इतने हदन तक मत्थापचची करोगे,े ठोकरें खाओगे तब न कदर करोगे ेइसकी। मगर भैय्या, पाओगे ेइतना ही। इससे आगे नहीींजाना है, इस। यही भगर्ान की महहमा है। इसमलए, 'म'ैं आत्मा महामौन हूाँ और हर हालत में 'महामौन' हूाँ। देखो, जब 'म'ैं फकसी का अनुभर् करता हूाँ (अनुभर् करो) फकस स्त्स्थतत में अनुभर् करता हूाँ। तो, ये तनश्चय हो गया और तनश्चय हो गया होगा, तुम सब स्त्जज्ञासुओ ंको फक जानना अनुभर् करना मुझ आत्मा का ही िमर्ह है, मुझ आत्मा का ही काम है। मगर ये पता लगाओ फक एक सूि कल रात को मलखाया था ! उस स्त्स्थतत का अनुभर् करो, स्त्जसमें तुम हमेर्ा रहते ेहो। इसकी व्याख्या सुबह हुई थी। 'हााँ' -

1. उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसका अनुभर् तुम हमेरा् करते ेहो।

2. उस स्स्थतत को देखो, स्जसको तुम हमेरा् देखते ेहो।

3. उस स्स्थतत को जानो, स्जसको तुम हमेरा् जानते ेहो।

क्योफक भैय्या! अनुभर् जो होता है, रो् दो प्रकार का होता है। एक तो इस्न्द्रयगम्य और एक अनुभर्गम्य ? इस्न्द्रयों के द्र्ारा जो अनुभर् फकया जाय, उसे ेइस्न्द्रयगम्य अनुभर् कहते ेहैं। समझो... मन के सयाीग से, बुद्धि के सयाीग से, धचत्त के सयाीग से, प्राण के सयाीग से अथरा् और इस्न्द्रयों के सयाीग से जो अनुभर् फकया जाता है, उसे े इस्न्द्रयगम्य अनुभर् कहते ेहैं और कहते ेभी है फक भाई ये अनुभर्गम्य चीज है। जरा समझो इसको, र्धदों पर र्ेचार करो। तो कहते ेहैं ये अनुभर्गम्य चीज है-तो अनुभर् तो हुआ 'म'ै और गम्य हुआ रो् पदाथ।श जीऽऽ । अरे, इस्न्द्रयगम्य और अनुभर्गम्या हाूँ-अनुभर् रो् पदाथ शनहीां है अनुभर्गम्य है। इस्न्द्रयगम्य और अनुभर्गम्य, अब इस्न्द्रयगम्य फकसको कहते ेहैं और अनुभर्गम्य फकसको कहते ेहैं? अरे, र्ेकल्प तो इस्न्द्रयगम्य होता है और र्ेकस्ल्पाार अनुभर्गम्य बन गया ना!! अचछा! तो सूि कहता है फक 'उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसका अनुभर् तुम हमेरा् करते ेहो।'

तो भैय्या। इस्न्द्रयों के द्र्ारा स्जसका अनुभर् होता है, उसको र्ेकल कहते ेहैं। तो सर्कशाल में क्या र्ेकल्प रहता है? नहीांरहता। और सूि कहता हाक उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसका अनुभर् तुम हमेरा् करते ेहो। तो र्ेकल्प का अनुभर् हमेरा् होता ही नहीां? ना। मुक्तानुचर रा्सर्ाी जी. जी। स्ामी जी-क्योफक र्ेकल्प हमेरा् रहता ही नही।ां र्ेकल्प सर्कशाली। नहीांहोता। तो अनुभर् सर्कशालीन कैसे ेहोगा? अचछा, रा्ह!! देखो मस्ती में बैठे हो, आनन्द लेरहे हो इस समय। र्ीी खा रहे हो, रास्ता चलेजा रहे हो, पर 'म'ै आत्मा हूँ फक अनात्मा हूँ, सत्य हूँ फक असत्य हूँ, जड़ हूँ फक चेतन हूँ, रष्ाि हूँ फक दृश्य हूँ, स्ीि हूँ फक पुरुष हूँ, इसका अनुभर् नही ां हो रहा है। 'म'ै कौन हूँ, 'म'ै क्या हूँ, 'म'ै कैसा हूँ त्रबल्कुल नही।ां क्योफक ये सब र्ेकल्प है, यह सभी इस्न्द्रयगम्य हैं। र्ेकल्प का अनुभर् हमेरा् नहीांहोता-र्ेकस्ल्याार का...। अब डूब जाओ, इसी सागर में रा्ह! ये चीज है। इसके जाननेके मलए महान् ्पुरुष कहते ेहैं 'नो दाई सेल्फ' Know thyself ! अपनेआपको जानो, यही अपनेआपको जानना है। रा्ह! मर्!! कैसी सहजार्स्था, कैसी र्ेलक्षण सहज समाधि है। मर्! उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जस स्स्थतत का अनुभर् तुम हमेरा् करते ेहो। हमेरा् भैयै्या! र्ेकस्ल्पाार का अनुभर् करते ेहो-न फक र्ेकल्प का। क्योंफक र्ेकल्प सर्कशालीन नहीांहोता। र्ेकल्प कभी-कभी होता है, र्ेकल्प क्या है-ये अमुक है, ये िला ूँचीज है, ये स्ीि है, ये पुरुष है, ये िन है, ये मकान है- र्ेकल्प कहते ेहैं इसको, सर्कशाल में नहीां रहता और सर्कशाल में न रहने रा्ला जो र्ेकल्प है, इसका अनुभर् इस्न्द्रया ूँकरती हैं। ये इस्न्द्रयगम्य अनुभर् कहलाता है। आखूँ र्ेकल्प को देखती हैं, रा्णी र्ेकल्प का कथन करती हैं, मन र्ेकल्प के मलए जाता है, धचत्त र्ेकल्प का धचतांन करता है, बुद्धि र्ेकल्प का तनश्चय करती है रा्ह! और क्या, स्जस समय र्ेकल्प पैदा होता है उसी समय ही इस्न्द्रयाूँपैदा होती हैं। उसके पहले ेइस्न्द्रयाूँ ही नहीांहै। त्रबल्कुल नहीांहै। र्ेश्र् के मलए चुनौती है, कोई आ करके मसद् किरे।

इस्न्द्रयााँभी सर्कशाल में नही ांरहती, र्र्कल्प को ही ग्रहण करनेके मलए ही तुरांत इस्न्द्रयााँतैयार होती हैं। देखनेका र्र्कल्प हुआ िर्ट्सि आखूँ आ गयी। सुनने का र्र्कल्प हुआ कण शइस्न्द्रया ूँआ गयी।ां हर समय इस्न्द्रयााँनही ां रहती। हर समय तो यही...। बस, मस्त रहो। और इस्न्द्रयााँबनाना नहीांपड़ता। अपनेआप 'म ैं ही इस्न्द्रया ूँहो जाता हूूँ। र्ाह!!

स्र्ामीजी-क्योंफक मेरे मसर्ाय तो कोई है ही नही।ां तो, इस्न्द्रयााँकौन पैदैा करेगा? सुनने की जरूरत पड़ती है तो, 'म ैं ही कण शइस्न्द्रयााँबन जाता हैं। देखने ेकी जरूरत पड़ती है, तब 'म ैं ही आखूँ बन जाता हूूँ। सब कुछ • है' ही हो जाता हूूँ। सब मेरी ही लीला है, मेरा ही खेल है। इसमलए, उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसमें तुम हमेर्ा रहते े हो। क्या सुन्दर र्र्लक्षण... पहले ेर्र्कल्प पैदा होता है, उसके बाद उसको ग्रहण करने के मलए इस्न्द्रयााँपैदा होती हैं इस्न्द्रयों को र्ास्त्रमें 'गो' कहतेहैं। इस्न्द्रयों के र्र्षय को 'गोचर' कहते ेहैं। 'गो गोचर जहां लधग मन जाई।' गो माने इस्न्द्रय। जैसे– तुमको गाय खरीद के लाना है, दिू पीना है, तो उस र्क्त पहले ेगाय के खाने का इांतजाम करोगे। पजाांब में भूसा को तुड़ी कहतेहैं। तुड़ी ले आओ, घास लेआओ खरीदकरा उसके रहने के मलए जगह का इांतजाम करो और जब सब इांतजाम हो जाता है, तब गाय खरीदकर लाते ेहो। इसी तरह इस्न्द्रयााँहैं गऊ और उनका चारा है र्र्षय और र्र्षय है र्र्कल्प रूप। तो पहले ेफकसी र्र्षय का र्र्कल्प हो जाता है-ये र्ब्द है, ये स्पर् शहै, ये रूप • है, ये रस है, ये गिां है। फकसी र्र्षय का पहले ेर्र्कल्प होता है-उसको ब्रहण करने के मलए गाय रूप इस्न्द्रयााँआ जाती है और र्ो भी इसमलए कहा जा रहा है फक-जब तुम र्र्षय मानते ेहो। अगर तुम्हारी दृस्ष्टमें र्र्षय और इस्न्द्रयााँहैं तो इस प्रकार और नही ांतो सर्कशालीन स्स्थतत तो है ही। 'उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसमें तुम हमेर्ा रहते े हो।' उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसका तुम हमेर्ा अनुभर् करते ेहो। 'म ैं आत्मा इस्न्द्रयगम्य का अनुभर् करता हूूँ फक अनुभर्गम्य का अनुभर् करता हूूँ? अब ये दूसूरी कोहि है। अनुभर्ाम्य का अनुभर् करता हूूँ। अनुभर्गम्य-अहांगम्या अरे, भाई। र्र्कल्प जब नहीां रहा तो र्र्कल्प स्जस पर आिाररत है। अचछा, जो अनुभर्गम्य है र्ह इस्न्द्रयगम्य नहीां, तो जो अनुभर्गम्य है र्ह 'म ैं ही तो हूूँ। अनुभर्गम्य क्या है, अनुभर्गम्य कैसा है, अनुभर्गम्य कौन है? इसको 'म ैं बताऊूँ तो कैसे ेबताऊूँ? अगर 'म ैं बताता हूूँ तो अनुभर्गम्य नहीां, र्ाणीगम्य हो जाता है, मुक्तानुचर र्ास्र्ीजी-रूनों कोती ले करलई हे जी। स्र्ामी जी हााँ, नहीांगा दूनूो कोती ले करलई हे जी, मुक्तानुचर र्ास्र्ीजी- सब गड़बड़-सड़बड़ मामला है। हााँ, अगर कुछ कहता हूूँ तो र्ाणीगम्य, र्ाणी का र्र्षय हो गया और नहीां कहता... र्ास्र्ीजी- तो कौन बैठेगा यहा।ूँ स्र्ामीजी-इसमलए, जो अनुभर्गम्य है र्ह 'म ैं ही हूूँ। दूसूरी चीज है ही नहीांअनुभर्गम्य, मसर्ाय मुझ आत्मा के! बाकी सब इस्न्द्रयगम्य है और अनुभर्गम्य है र्ही हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है। क्योंफक, स्जतने लोग अभी बैठे हो अगर बुद्धि से सोचो, बुद्धि से र्र्चार करो, बुद्धि से तनश्चय करो! जो हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत है... अगर बुद्धि र्र्चार करें फक कैसी स्स्थतत है यह? मुक्तानुचर र्ास्र्ीजी- बुद्धीचि नई रहे। स्र्ामी जी-हााँ, बुद्धि खो जाती है। मन अमन हो जाता है, धचत्त-धचत् ्हो जाता है। अरे भैय्या! स्जसने चोर को छुर्ा, चोर हो गया। छुर्ा-छुई का खेल देखे हो कभी, एक लड़का चोर बनता है- तो चोर लड़का जब दूसूरे को छूता है, जो छूता है (चोर लड़का) उसका चोरपना गायब हो जाता है। जो छुर्ाता है र्ह चोर बन जाता है। कह गए दास कबीरा तो स्जसने भगर्ान आत्मा 'म ैं को छुर्ा? गायब। र्ाह! तो उस स्स्थतत का अनुभर् करो स्जसका अनुभर् तुम हमेर्ा करते ेहो। र्ाह! मस्ती में बैठे हो, र्रोी खा रहे हो, र्रोी बना रहे हो, रास्ता

चलेजा रहे हो। पर पता भी तो लगेफक 'म' ैं कौन हूँ। र्ाह! क्या सुन्दर स्स्थतत है। यही महामौन पद है। 'महामौन'।
सत्सगी - स्जसके स्मरण मिा से सारा र्ंश्र् मौन हो जाता है। स्र्ामीजी हाूँ, र्ही महामौन। स्जस महामौन के
स्मरण मिा से सारा र्ंश्र् महामौन हो जाता है। मन ही तो र्ंश्र् है। मन मौन हुआ फक सारा र्ंश्र् मौन हुआ।
र्ास्र्ा जी- जी हा।ूँ र्ास्र्ा जी-

मौनंचैवान्द्स्त्म गुह्यानांज्ञानंज्ञानवतामहम् ्।।

गीता 10/38

सारा र्ंश्र् मौन हो जाता है। उस स्स्थतत का अनुभर् करो, स्जसका तुम हमेर्ा अनुभर् करते ेहो। तो, यहाूँपर प्रश्न होता है फक हमेर्ा रहने र्ाली स्स्थतत तो रहती ही है , क्या र्ह अनुभर् की चीज है? तो क्या देखनेकी चीज है। अनुभर् की चीज है।

सब ममलकर स्र्ामीजी के साथ ग़ज़ल गाते ेहैं।

उफ़ है ऐसी न्द्जंदगी न्द्जसकी ममला साकी नहीं। हा।ूँ
शम िको भी शम िहै 'वाह' पीना कभी बाकी नहीं ं। हा।ूँ।
वो नशा क्या न्द्जसको तुरसी एकदम देवे ेउतार।
एक मत्तबिे ेचढ़के उतरना फिर कभी बाकी नहीं।
सूरतें लाखों हैं पर सूरतगरी है एक की।
देखते ही जीना मरना फिर कभी बाकी नहीं।
होश को बेहोश करती लानते ेदेते ेहैं लोग ।
मगर यहाूँ ॥.....
बेहोश भी बेहोश है होश आना बाकी नहीं।
साफकया ने क्या त्तपलाया कब त्तपलाया वाह-वाह ।
अरे, म ैंकहा ूँऔर तू कहा ूँदुतुनया ूँकहा ूँबाकी नहीं।
जो मय है एक सौ पैमाना ए हदल में भरी,

'मुक्त' पीता व त्तपलाता बाकी भी बाकी नहीं। हाूँ
उम्र है ऐसी न्द्जंदगी न्द्जसको ममला साकी नहीं। हा।ूँ।
ॐ पूणमिदः पूणमिमदं पूणात्ि्पूणमिुदच्यते ।
पूणस्त्यि पूणमिादाय पूणमिेवावमशष्यते ॥
ॐ शान्द्न्तः शान्द्न्तः शान्द्न्तः ॥

र्र्र्

■गर हकीकत में आनिक हो, तो ननर्वकिल्प ककलें केभीतरसहजानन्दी गिही तख्त पर मिाूक बैठा हैं, नकाबे आसमान चीरकर अंदर घुस जाओ।

■ आनिक मिाूक नजस वक्त दोनों नमलतें हैं, उस वक्त दोनों की हस्ती खत्म हो जाती है। महज इश्क रह जाता हैं।

■ नजरेमिाूकआनिके वतन खत्म करदेतीं हैं।

कीतत,श महारानी माया के मसर का मुकि है। कांचन, काममनी अनन्द्त श्री र्ईभूर्षत महारानी माया के दोनों कानों के कुण्डल हैं। र्ासना पररिान है। देहामभमान खड्ङ्ग है। अज्ञानी जीर् र्ाहन है। कामाहदक र्ईकार सेना है। त्यागामभमानी बमलपरुु है। मान्द्यता जगत् ्साम्राज्य है। ऐसी स्र्नामिन्द्या, महामहहमामयी, र्ईश्र्सुन्द्दरी, स्र्मुख र्ईमोहहनी, दयाहीन हृदयर्ाली, र्ईश्र् को ततरछे नयनों से देखने ेर्ाली, श्रीमती साम्राज्ञी महामाया महारानी का पतत महाराजाधिराज समस्त चराचर का सम्रिा सर् शका अस्स्तत्र् एर्ां सर् शका 'म'ैं अपना आप भगर्ान आत्मा 'म'ैं है।

आमशके माशूक हूँ, इक तरिा मजा है।
दीवाना हूँ म ैंन्द्जसका, वह दीवाना है मेरा ।।

■ यार का नमलना इतना आसान हैं, नजसकी आसानी ही परिानी हैं।

■ यार इतना खूबसूरत हैं, नजसकी खूबसूरती ही बदसूरती हैं।

■ यार इतना लबालब हैं, नजसमें तमाम खानमया ाँही नजर आती हैं।

■ कदल का दरवाजा खटखटा कर आजादी आवाज दे रही हैं कक ऐ नादान! नजसकी तुझको तलाि हैं, वह तेरे चारों तरफ हैं, नजसे कहते हैं आजादी। खानतर कर, प्यार कर, दीदार कर, बेहोि हो, खामोि हो, फरामोि हो।

कहूँ क्या म ैंतुम कौन हो और क्या हो ।
हो सबसे ममले ेऔर सबसे जुदा हो ||1||

प्रकृतत भी तुम्ही पुरुष भी तुम्हीं हो ।
कहीं ंतुम पुजारी कहींदेवता हो ||2||

तुम्हारा ही है खेल यह त्तवश्व सारा ।
तुम्हीं अन्द्ग्न पृथ्वी गगन जल हवा हो||३||

नहींमें नहींहो तो हूँमें हा ूँतुम ।
तुम्हीं नेस्त्त और अन्द्स्त्त की व्याख्या हो||4||

तनलज्जे हो इतनेफक हो सव िव्यापक ।
लजीले हो इतनेअगोचर सदा हो ||5||

□ आज्ञा की अवहेलेना प्रमाद का स्वागत (सन्मान) हैं।

□ व्यनक्तत्व के अहं भाव में अवहेलेना नननहत हैं।

□ मन के ग्रहण में व्यनक्तत्व का अनस्तत्व हैं।

□ मन का ग्रहण क्षुद्रता (दुबुलिता, नीचता) का प्रतीक हैं।

□ वैकनल्पक व्यनक्तत्व में क्षुद्रता की रेखा हैं।

□ स्वार्थी हृदय को ककसी भी क्षेत्र्र में सेवा का अनिकार नहीं।

□ श्रीखण्डकी छत्रछाया में बैठकर नवष्टी में स्नानकरना कोईबुनिमानीनहींहैं।

आत्मतनष्ठा अतांररक्ष यान है। तनर्र्कशल्पता अतांररक्ष है। सहजपद अन्द्तररक्ष पद है। सहजानन्द्दी यिाी है। अनुभूतत कैमरा है। अतनर्ाचशयता िेलीर्ज़न है। जहाँपर 'म' ैं के अततररक्त कुछ भी नही ांयही र्हा ूँका धचि है। अन, र्ाणी रूप पृथ्र्ी से परे कल्पनातीत पद यही अनन्द्त योजन दूर्ी है।

□ स्वरूप की नवस्मृनत ही माया हैं।

□ अरे, ही स्वरूप नवस्मृनत हैं।

□ अरे, का अत्यान्ताभाव ही आत्मा का सतत् चचंतन हैं। ननर्वकिल्पता का नवकल्प ही ननर्वकिल्पता का बािक हैं।

□ आत्म चचंतन का संकल्प ही आत्म चचंतन में नवक्षेप है।

□अरे का अत्यन्ताभाव ही सतत् आत्म चचंतन हैं। इसका भाव यह हैं कक जब आत्मा 'मैं' से नभन्न कुछ हैं नहीं तो आत्मा का चचंतन इसके नसवाय और क्या हो सकता हैं अर्थवा यू ँकहो कक कुछ भी चचंतन न करना, यही आत्म-चचंतन हैं। 'मैं' के अनतररक्त कुछ भी न देखना, यही आत्मदिनि हैं। 'मैं' के अनतररक्त कुछ भी न जानना यही आत्मज्ञान हैं। बस, इसी सम्राट पद पर ननरन्तर नरुथत रहो।

□ संत द्वारा सन्मान प्रमाद का प्रतीक हैं।

□संत की नझड़ककया ाँक्षुद्रानभमान का काल हैा

□ संत हृदय संत की फटकार का नभखारी होता हैा क्षुद्र हृदय सम्मान का।

□व्यनक्तत्व का अनादर संतों के सम्मान का हाजमा चूण हिैा

□ व्यनक्तत्व का अनादर संत रिणागनत का फल हैा

□ संत रिणागनत भगवान की रिणागनत का पयायि हैा

□ मन की तृष्णा रूपी क्षुिानि को िाति करने के नलए कुछ भी चचंतन न करना ऐसा ब्रह्म चचंतन ही ब्रह्मचय हिैा

□ नवश्व रूपी गृह मेंनस्थत होने वाला ही गृहस्थ हैा

□ वासना रूपी बननता से दूरू सहजावस्था रूपी तप मेंआरुढ़ होना ही वानप्रस्थ हैा

□ त्याग मानेंत्याग, ग्रहण माने ग्रहण, दोनों नवकल्पों का संन्यास ही संन्यास हैा

□चारों आश्रमों के भाव के अभाव पद मेंजो नस्थत सोई अवूित हैा

□ अंतररक्ष यात्री बनो।

□ जो अंतंररक्ष मेंरहता है, वही अंतररक्ष की यात्रा कर सकता हैा

|| माया पचांकम् ़्||

तनरुपम तनत्य-तनरंशकेऽप्यखण्डे मतयधचतत सवि-त्तवकल्पात्तवशुन्ये ।
घटयतत जगदीश-जीवभेदं त्वघहटत-घटना-पटीयसी माया ||1||

श्रुतत-शत्-तनगमान्त-शोधकानप्यहरु धनाहद-तनदशनेिन सद्यः ।
कलुषयतत चतुष्पदाद्यमभन्नान् ़्त्वघहटत-घटना-पटीयसी माया ||2||
सुखधचदखण्ड त्तववोधमद्द्त्तवतीयंत्तवयदनलाहद-त्तवतनममतेि ़ेतनयोज्य ।
भ्रमयतत भवसागरे तनतान्टतंत्वघहटत-घटना-पटीयसी माया ||३||
अपगत-गुण-वणि-जातत-भेदे सुख-धचत-त्तवप्र-त्तवडाद्यहंकृतत च ।
स्तुटियितत सुत-वार-गेह-मोहं त्वघहटत-घटना-पटीयसी माया ||4||
त्तवधध हररहर-भेदमप्यं ़ंखण्डेवत त्तवरचय्य बुधानत्तप प्रकामम् ़्।
भ्रमयतत हररहर-त्तवभेद-भावान् ़्व्वघहटत-घटना-पटीयसी माया ||5||

- आद्यजगद्गुरु कंराचाय श

कहीं ़होय त्तवरंधच सृनृद्ष्ट रचता अनेक भातूँत ।
कहीं ़होय मुकुन्द सृनृद्ष्ट पालत अपेला है ।
कहीं ़होय महेश भेष सृनृद्ष्ट खास नाश करे ।
या प्रकार तीन रूप धारे तीन बेलो है ।
कहीं ़जै गोत्तवदं देव वृनृद होय आनन्द करे ।
कहीं ़बतन दैत्य-देव झगर झमेलो है ।।
कहा ़ूलौँ बखातनये न जातनये सो वाफक गतत ।
है सही अकेला पर अनेक खेल-खेला है।

मुक्ताष्कि

यस्त्मानुभूतत त्तवशदी कृत शास्त्र वस्त्राम् ्।
शृंगार षोडशरताममव तत्वतनष्ठाम् ्॥
श्रद्धामयस्त्य पुरुषस्त्य पपात तेजो ।
ह्वा तपस्त्टवजतन लोक हहताय मुक्तः ||1||

अहो अलं ंश्लाघ्य तमंकृतं कुलम् ्।
अहो अलं ंकश्यप गोर वृत्तृतम् ्।।
अलंकृता सा जननी गत व्यथा ।
तनर्रिती सुन्द्स्त्मत सुन्दरमुखम् ्||2||
सत्यामशषोहह गुरवः कुल देवता च ।
नान्दी मुखेन त्तपतरः स्त्वयमेव तृप्तृताः ॥
आनन्दमय कृत पूव ितनपात मसद्धो ।
जातः त्तपता सुत मुखाम्बुज दशनैिन ||3||
लोकामभरामं सकलामभरामम् ्।
झण्डापुरन्धी नयनामभरामम् ्।

ष्णूा गृहीनां गृहहणी जनानाम् ्।
हढ़ा प्रवृत्तृतत्तः प्रतत पुरभावम् ्||4||
स्त्वयोगमाया रुधचराङ्ग त्तवग्रहः ।
ाडि कररष्यन्द्न्नव सवत्तिवग्रहान् ्।।
सतनत्यमुक्तो त्तवदुरुेतत नामकः ।
वात्सल्यतायांपरतंरवद्धृतः ।।5।।
बरशूल चिाङ्फकत चारू पावयोः ।
संलग्नधूमल प्रततलब्ध कामौ ।।
वचाङ्गुली यात्तवव देव देवौ ।
यरैव तरैव हह सवदिेवाः ||6||
ययेव तीथीकृत जन्म भूममः ।
स एवतीथी कृत सव िभूममः ।

यः सेवकानांहृदयंपुनातत ।

स एवस्त्यान्मद् वचसो त्तवभूततः ॥7॥

हे ज्ञान मान वसुवधनि न्दृष्टमारात् ्।

स्त्वात्मप्रदोऽस यदहं तदहं त्वमेव ।।

शय्यासनाटन त्तवकत्थन भोजनाहद ।

ष्वैक्यात्तथात्तप यदधं ंतदधं िमस्त्व ||8||

मुक्ताष्टकममदं पुण्यम् ्सन्तरूप हरेस्त्मरन्|्

पठन्नसृण्वन्नरोतत । सवं ंमसद्धधन्नसंशयः||9||